जैन संस्कृति-रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ७६ वाँ रत्न

श्रावक

आवश्यक - सूत्र

मूलपाठ, कठिन शब्दार्थ व प्रश्नोत्तर सहित)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ
नेहरु गेट ब्यावर (राज.)

द्रव्य सहायक

श्री बोहरा अर्द्ध मूल्य साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

प्राप्ति - स्थान

१ श्री अ भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरु गेट, ब्यावर

२ श्री जैन ज्ञान श्रावक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर(राज.)

३ श्रीमान् जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी
तलावलेन पो बॉ. नं २२१७ बम्बई - ४००००२

४ श्री भंवरलालजी बांठिया नं ९ पुलियान तोप हाईरोड,मद्रास-१२

५ श्री हस्तीमलजी किशनलालजी जैन ६७ बालाजीपेठ, जलगाव-१

६ श्री एच आर डोशी, त्न-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६

७ श्रीमान् सन्तोपजी जैन, रामपुरा वाजार, कोटा (राज)

८ श्री सुधर्म सेवा समिति भ० महावीर मार्ग, बुडाणा - ४४३००१

९ श्री श्रुत ज्ञान स्वाध्याय प्रचार समिति सांगानेरी गेट, भीलवाड़ा

१०. श्री अशोकजी एस छाजेड़,१२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदाबाद-२२

मूल्य- ५-००

द्वितीय आवृत्ति
१५०००

वीर संवत् २५२३
विक्रम संवत् २०५४
नवम्बर सन् १९९७

मुद्रक - गरिमा ऑफसेट गायत्री नगर रीको द्वितीय, ब्यावर

निवेदन

१६९ व्यावहारिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए जैसे
त्रा पानी अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार साधक के आध्यात्मिक
ोवन के विकास के लिए उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक है ।
सीलिए इसका नाम 'आवश्यक सूत्र' है । साधक सब कार्यो को
ौण करके उभयकाल प्रतिक्रमण करते हैं यहाँ तक कि ट्रेन या
स आदि में यात्रा कर रहे हों तो वहाँ भी विवशता के कारण,
नग रही क्रिया का आगार रख कर संवर करके प्रतिक्रमण करते
है ।

हर वर्ष शिविरों मे हजारो शिविरार्थियो को प्रतिक्रमण का अभ्यास कराया जाता है । प्रतिक्रमण की पुस्तको का जब भी नया प्रकाशन होता है तो उसमे लिपि दोष, भावार्थ, विधि आदि में भिन्नता देखने को मिलती है । आज का बालक आने वाले समय में समाज का कर्णधार होने वाला है उसका मस्तिष्क सरल व कोरे कागज जैसा होता है । उसमे जैसे संस्कार डाले जावें वे जीवन भर अंकित रहते है एवं कंठस्थ किए पाठ भी अमिट रहते है । अत: बालको द्वारा याद किये जाने वाले प्रतिक्रमण के पाठो का शुद्ध उच्चारण हो व विधि एकरूपता वाली हो, इसके लिए लम्बे समय से चर्चा चल रही है । सभी अपेक्षा रखते हैं कि इस कार्य को प्रधानता देकर एवं पूर्वाग्रहो से हटकर पुराने ग्रन्थों की धारणाओं, विद्वानों की तर्कों आदि का अध्ययन कर ऐसी पुस्तक प्रकाशित की जावे जिसमे मूल पाठ शुद्ध हो, अर्थ, भावार्थ, प्रश्नोत्तर, विधि आदि तर्क व आगम सम्मत हों । उक्त भावनाओं का आदर करते हुए यह पुस्तक पाठकों, अध्यापको, शिविरार्थियों के हाथो मे पहुँचाई जा रही है ।

इस पुस्तक को व्यवस्थित करने में सेवाभावी श्रावकर श्रीमान् पारसमलजी संचेती, महामन्दिर जोधपुर, आदर्श वैरा आत्मार्थी श्री वीरेन्द्रभाई बोहरा कोयंबटूर, ने अमूल्य समय देक अनेक प्राचीन ग्रन्थों के पाठों एवं आगमिक धारणओं को सुझा में सहयोग दिया । इस प्रकार पुस्तक की शुद्ध पांडुलिपि तैया करने में, सेवाभावी वैरागी बंधु श्रीमान् धनराजजी बडेरा, जोधपु ने अमूल्य सहयोग दिया । साथ ही प्रूफ संशोधन व पुस्तक के कम्पोज कराने में विद्वान् सुश्रावक श्रीमान् नेमीचन्दजी बांठिया व श्री पारसमलजी चंडालिया का अथक परिश्रम रहा इसके लिए मैं इन सभी महानुभावों का आभार प्रकट करता हूँ ।

स्थानकवासी परंपरा के सभी शुभ चिन्तकों की सेवा में निवेदन है कि कृपया आप शिविरों व प्रतिक्रमण सीखने वालों के लिए इस पुस्तक का अवश्य उपयोग करें ताकि प्रतिक्रमण क उच्चारण शुद्ध हो व विधि की एकरूपता रहे ।

आशा है कि अध्यापकगण व पाठकवृन्द इस पुस्तक से लाभान्वित होकर नित्य उभयकाल शुद्ध प्रतिक्रमण करने की प्रवृत्ति बनाएंगे तथा अपनी आत्मा का कल्याण करते हुए शीघ्र मोक्षगामी बनेंगे।

अन्त में समाज के विद्वानों की सेवा में निवेदन है कि पूर्ण सतर्कता बरतने पर भी छद्मस्थता व अल्प ज्ञान के कारण किसी प्रकार की अशुद्धि रह गई हो तो कृपया उसका शुद्धिकरण करके पढ़े एवं कार्यालय को भी संशोधन हेतु सूचित करने की महती कृपा करें ।

निवेदक

प्रेमचन्द कोठारी, बन्दी

आवश्यक सूत्र

आवश्यक सूत्र

प्रारम्भिक प्रश्नोत्तर

प्र. १. प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ. पापों से पीछे हटना, पापों की आलोचना करना, अशुभ योग से शुभ योग में आना और व्रतों में लगे अतिचारो से लौटकर आचार मे आना प्रतिक्रमण है ।

प्र. २ प्रतिक्रमण का दूसरा नाम क्या है ?

उ. प्रतिक्रमण सूत्र का दूसरा नाम आवश्यक सूत्र है ।

प्र. ३ आवश्यक सूत्र किसे कहते हैं ?

उ जो सूत्र चतुर्विध संघ के लिये सबसे पहले जानना और उभयकाल करना आवश्यक होता है, उसे आवश्यक सूत्र कहते हैं ।

प्र. ४ आवश्यक सूत्र के कितने अध्ययन है ?

उ. आवश्यक सूत्र के छह अध्ययन हैं :-

(१) सामायिक (२) चतुर्विंशतिस्तव
(३) वन्दना (४) प्रतिक्रमण
(५) कायोत्सर्ग (६) प्रत्याख्यान

प्र. ५. आवश्यक सूत्र के इन छह अध्ययनों का (भेदों का) क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया है ?

उ. आलोचना प्रारंभ करने के पूर्व आत्मा में समभाव की प्राप्ति होना आवश्यक है अतः सावद्य योग के त्याग रूप पहला सामायिक आवश्यक बताया गया है । सावद्य योगों

से विरति रूप मोक्षमार्ग का उपदेश तीर्थंकर प्रभु ने दिया अतः उनकी स्तुति रूप दूसरा चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक है इससे दर्शन विशुद्धि होती है । तीर्थंकरों द्वारा बताये हुए धर्म को गुरु महाराज ने हमें बताया है अतः उनको समर्पित होकर आलोचना करने के लिए तीसरा वन्दन आवश्यक बताया गया है । ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में जो अतिचार लगते हैं उनकी शुद्धि के लिए पश्चात्ताप रूप चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक है । आलोचना करने के बाद अतिचार रूप घाव पर प्रायश्चित्त रूप मरहम पट्टी करने के लिए पांचवां कायोत्सर्ग आवश्यक कहा गया है । कायोत्सर्ग करने के बाद तप रूप नये गुणों को धारण करने के लिए छठा प्रत्याख्यान आवश्यक बताया गया है ।

प्र. ६. ये आवश्यक कब किये जाते हैं ?

उ. नियमित रूप से सूर्यास्त के पश्चात् तथा प्रातःकाल सूर्योदय के पहले तक उभय काल, ये छहों आवश्यक करने की भगवान् की आज्ञा है ।

प्र. ७. नित्य उभयकाल आवश्यक करने से क्या लाभ है ?

उ. (१) सामायिक आदि आवश्यकों का ज्ञान होता है ।(२) ये आवश्यक अवश्य करणीय हैं । (३) किये गये व्रतो की स्मृति रहती है ।(४) व्रत ग्रहण न किये हों तो ग्रहण करने की भावना बनती है। (५) देवगुरु का स्मरण हो जाता है (६) सम्यक्त्वादि में लगे अतिचारों की शुद्धि होती है ।(७) नित्य आवश्यक करने से दूसरों को भी उसका महत्त्व समझ में आता है ।(८) इससे जीव कर्मो की कोटि खपाता है और उत्कृष्ट रसायन (भाव) आवे तो तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करता है।

८. सूत्र किसे कहते हैं ?
भगवान् की वाणी से गणधरों और बहुश्रुतों (१० पूर्वधर आदि) ने अपने शब्दों में जो रचना की है, उन्हें सूत्र कहते हैं ।

९. आवश्यक सूत्र को 'प्रतिक्रमण-सूत्र' क्यों कहा गया है ?
आवश्यक सूत्र के छह अध्ययनों में चौथा आवश्यक (अध्ययन) सबसे बड़ा है और उसका नाम प्रतिक्रमण है अतः उसके नाम से ही सूत्र का यह नाम प्रचलित है ।

१० प्रतिक्रमण के कितने प्रकार हैं ?
काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण के निम्न पांच भेद किये गये हैं -

(१) **दैवसिक** - प्रतिदिन सायंकाल - सूर्यास्त के बाद दिन भर के पापों की आलोचना करना ।

(२) **रात्रिक - रात्रि के अन्त में** - प्रातःकाल के समय रात्रि के पापों की आलोचना करना ।

(३) **पाक्षिक** - महीने में दो बार - पाक्षिक पर्व के दिन - १५ दिन में लगे हुए पापो की आलोचना करना ।

(४) **चातुर्मासिक** - कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा और आषाढ़ी पूर्णिमा को चार महीने मे लगे हुए पापों की आलोचना करना।

(५) **सांवत्सरिक** - प्रत्येक वर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमी - संवत्सरी के दिन वर्ष भर के पापों की आलोचना करना ।

११. प्रतिक्रमण किसका किया जाता है ?
(१) मिथ्यात्व (२) अव्रत (३) प्रमाद (४) कषाय और (५) अशुभ योग का प्रतिक्रमण किया जाता है ।

प्र. १२. मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना मिथ्यात्व है।

प्र. १३. अव्रत किसे कहते हैं ?

उ. एकांश या सर्वांश में प्रत्याख्यान न करना अव्रत है ।

प्र. १४. प्रमाद किसे कहते हैं ?

उ. धर्म कार्य में आलस्य करना, असावधान रहना, निर्धारि समय पर धर्म कार्य न करना और इन्द्रियों के विषयो आसक्त रहना।

प्र. १५ कषाय किसे कहते हैं ?

उ. 'कष' अर्थात् संसार, 'आय' अर्थात् प्राप्ति अथवा जिसस संसार मे परिभ्रमण करना पड़े, उसे कषाय कहते हैं क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार कषाय हैं ।

प्र. १६. अशुभ योग किसे कहते हैं ?

उ. मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को अशुभ योग कहते हैं ।

प्र. १७. जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं उसके लिए क्या प्रतिक्रमण करना आवश्यक है ?

उ. जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं उसको भी प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए । क्योंकि आवश्यक सूत्र बत्तीसवां आगम बताया गया है । आगम का स्वाध्याय आत्म-कल्याण तथा निर्जरा का कारण है तथा प्रतिक्रमण एक ऐसी औषधि के समान है जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग शान्त हो जाते हैं, रोग नहीं होने पर उस औषधि के प्रभाव से वर्ण, रूप, यौवन और लावण्य आदि में वृद्धि होती है और भविष्य में रोग नहीं होते । इसी तरह यदि दोष लगे हों तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती

है और दोष नहीं लगा हो तो प्रतिक्रमण भाव और चारित्र की विशेष शुद्धि करता है । इसलिए प्रतिक्रमण सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है ।

१८. प्रतिदिन उभयकाल प्रतिक्रमण करने से दैवसिक और रात्रिक अतिचारों की शुद्धि प्रतिदिन हो जाती है । फिर ये पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण क्यों किये जाते हैं ?

जिस प्रकार अपने घरों में प्रतिदिन सफाई की जाती है फिर भी त्यौहार (होली, दीवाली आदि) एवं विशेष अवसरों पर विशेष रूप से सफाई की जाती है । इसी प्रकार प्रतिदिन उभयकाल प्रतिक्रमण करते हुए भी पर्व दिनों में आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए पाक्षिक, चौमासी आदि प्रतिक्रमण किये जाते है ।

१९. प्रतिक्रमण करने से क्या आत्मशुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है ?

प्रतिक्रमण में दैनिक आदि चर्या का अवलोकन किया जाता है। आत्मा में हुए आस्रवद्वार (अतिचारादि) रूप छिद्रों को देखकर रोक दिया जाता है । जिस प्रकार कपड़े पर कीचड़ आदि लगने पर उसे धोने से शुद्ध हो जाता है । उसी प्रकार आत्मा पर लगे अतिचारादि रूप मलिनता को पश्चात्ताप आदि के द्वारा साफ किया जाता है । व्यवहार में भी अपराध को सरलता से स्वीकार करने पर, पश्चात्ताप आदि करने पर अपराध हल्का हो जाता है । जैसे "माफ कीजिए (सॉरी)" आदि कहने पर माफ कर दिया जाता है। उसी प्रकार अतिचारों की निन्दा करने से पश्चात्ताप करने से आत्म शुद्धि (पाप का धुलना) हो जाती है ।

सूत्र विभाग

इच्छामि णं भंते का पाठ

(प्रतिक्रमण प्रतिज्ञा)

इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाण देवसियं ❀ पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय ❀ णाण दंसण-चरित्ताचरित्त-तव-अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं ॥

मूल शब्द	अर्थ
इच्छामि णं	मै चाहता हूँ (णं वाक्य अलंकार मे)
भंते !	हे भगवन् (हे पूज्य !)
तुब्भेहिं	आपके द्वारा
अब्भणुण्णाए समाणे	आज्ञा मिलने पर
देवसियं	दिन सम्बन्धी
पडिक्कमणं	प्रतिक्रमण (आवश्यक) को
ठाएमि	करता हूँ

❀ जहाँ जहाँ 'देवसियं' शब्द आवे वहाँ -वहां देवसियं के स्थान पर रात्रि में ''राइयं'' पाक्षिक में 'देवसियं पक्खियं' चातुर्मासिक मे 'चाउम्मासियं' और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में ''संवच्छरियं'' शब्द बोलना चाहिए ।

❀ जहाँ जहाँ 'देवसिय' शब्द आवे वहां वहां ''देवसिय'' के स्थान पर रात्रिक प्रतिक्रमण में ''राइय'' पाक्षिक में ''देवसिय पक्खिय'' चातुर्मासिक में ''चाउम्मासिय'' और सांवत्सरिक में ''संवच्छरिय'' शब्द बोलना चाहिए

देवसिय	दिन सम्बन्धी
णाण-दंसण	ज्ञान-दर्शन (सम्यक्त्व)
चरित्ताचरित्त	चारित्राचारित्र (संयमासंयम) (श्रावक का देश चारित्र)
तव	तप के
अइयार	अतिचारों का (९९ अतिचारों का)
चिंतणत्थं	चिन्तन करने के लिए
करेमि	करता हूँ
काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग को

प्रश्नोत्तर

प्र. १. प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने का कौनसा पाठ है ?

उ. "इच्छामि णं भंते" का पाठ है ।

प्र. २. इस पाठ मे किसकी प्रतिज्ञा की जाती है ?

उ. प्रतिक्रमण करने की और ज्ञान दर्शन चारित्र में लगे अतिचारों का चिन्तन करने के लिए कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा की जाती है ।

प्र. ३. "ज्ञान" शब्द की क्या परिभाषा है ?

उ. वस्तु के विशेष स्वरूप को जानना 'ज्ञान' कहलाता है ।

प्र. ४. 'दर्शन' शब्द का क्या अर्थ है ?

उ. जिन प्ररूपित नव तत्त्वों पर श्रद्धा करना दर्शन है ।

प्र. ५. "चरित्ताचरित्त" का क्या अर्थ है ?

उ. देशव्रत अर्थात् श्रावक के व्रतों को चरित्ताचरित्त कहा है क्योंकि पापों का सर्वथा त्याग करना चारित्र कहलाता है। श्रावक के मिथ्यात्व का तो सर्वथा त्याग होता है और बाकी पापों का त्याग देश अर्थात् अंश रूप से होता है इसलिये इसे चारित्राचारित्र - संयमासंयम कहते हैं।

प्र. ६. तप किसे कहते हैं ?

उ. जिस क्रिया द्वारा आत्मा से संबद्ध कर्म तपाये जाते हैं अर्थात् नष्ट होते हैं। जैसे अग्नि में तपने पर सोना निर्मल बन जाता है।

प्र. ७. अतिचार क्या है ?

उ. व्रतों में लगने वाले दोषो को अतिचार कहते है।

प्र. ८. कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उ. शरीर से ममत्व हटाकर एकाग्र चित्त से ध्यान करना कायोत्सर्ग है।

प्र. ९. अतिचार और अनाचार में क्या अन्तर है ?

उ. व्रत का एकांश भंग अतिचार और सर्वांश भंग अनाचार है। अर्थात् प्रत्याख्यान का स्मरण नहीं रहने पर या शंका से व्रत में जो दोष लगता है वह अतिचार है और व्रत तोड़ देना अनाचार है।

प्र. १०. अतिचार का प्रायश्चित्त क्या है ?

उ. मंद अतिचार का प्रायश्चित्त हार्दिक पश्चात्ताप और तीव्र अतिचारों का प्रायश्चित्त नवकारसी आदि तप है।

२ इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि ❀ काउस्सग्गं ❖ जो मे देवसिओ✪ अइयारो कओ, काइओ, वाइओ, माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो अणिच्छियव्वो, असावगपाउग्गो, णाणे तह दंसणे, चरित्ताचरित्ते, सुए, सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं बारसविहस्स सावगधम्मस्स जं खंडियं, जं विराहियं, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

मूल शब्द	अर्थ
इच्छामि	मैं चाहता हूँ
ठामि (ठाइउं)	करना
काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग
जो मे	(निम्न अतिचारों में से) मैंने जो कोई
देवसिओ	दिवस (दिन) सम्बन्धी
अइयारो	अतिचार

❀ हरिभद्रीवश्यक पृष्ठ ७७८ में "ठाइउं" पाठ है ।

❖ "इच्छामि ठामि काउस्सग्गं" के स्थान पर चौथे आवश्यक में श्रावक सूत्र में "इच्छामि पडिक्कमिउं" शब्द बोलना चाहिए ।

✪ जहां जहां भी देवसिओ शब्द आवे उसके स्थान पर रात्रिक प्रतिक्रमण मे "राइओ" पाक्षिक प्रतिक्रमण मे "देवसिओपक्खिओ" चौमासी प्रतिक्रमण मे "चाउम्मासिओ" और संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरिओ" पाठ बोलना चाहिये ।

कओ	किया हो
काइओ	काया सम्बन्धी
वाइओ	वचन सम्बन्धी
माणसिओ	मन सम्बन्धी
उस्सुत्तो	वचन से उत्सूत्र (सूत्र विरुद्ध) कहा हो
उम्मग्गो	उन्मार्ग (जैन-मार्ग से विरुद्ध) कहा हो
अकप्पो	काया से अकल्पनीय कार्य किया हो
अकरणिज्जो	अकरणीय (नहीं करने योग्य) किया ह
दुज्झाओ	(मन से) आर्त्तध्यान रौद्र ध्यान ध्याया ह
दुव्विचिंतिओ	दुष्ट चिन्तन किया हो
अणायारो	न आचरने योग्य का आचरण किया हो
अणिच्छियव्वो	(मन से) अनिच्छनीय की इच्छा की हो
असावग-पाउग्गो	श्रावक धर्म के विरुद्ध काम किया हो
णाणे तह दंसणे	ज्ञान तथा दर्शन मे
चरित्ताचरित्ते	चारित्राचरित्र (श्रावक व्रत) मे
सुए	श्रुत (ज्ञान) में
सामाइए	सामायिक में
तिण्हं गुत्तीणं	तीन गुप्तियों की
चउण्हं कसायाणं	चार कषायों के निषेधों की
पंचण्हमणुव्वयाणं	पांच अणुव्रतों की
तिण्हं गुणव्वयाणं	तीन गुणव्रतों की
चउण्हं सिक्खावयाणं	चार शिक्षा व्रतों की (इस प्रकार)
बारस्स-विहस्स	बारह प्रकार के
[illegible]	श्रावक धर्म की

तं खंडियं — जो देश से खण्डना की हो
जं विराहियं — जो सर्वथा विराधना की हो
तस्स मिच्छामि दुक्कडं — उसका मेरा पाप निष्फल हो

प्रश्नोत्तर

प्र. १. प्रतिक्रमण का सार पाठ कौनसा है ?

उ. प्रतिक्रमण का सार पाठ "**इच्छामि ठामि**" का पाठ है ।

प्र. २ इसे सार पाठ क्यों कहा है ?

उ. इसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि के लिए तीन गुप्ति, चार कषाय त्याग, पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत रूप श्रावक धर्म में लगे हुए अतिचारों का मिच्छामि दुक्कडं दिया गया है एवं आवश्यक पाठो का सार होने से इसे प्रतिक्रमण का सार पाठ कहा है ।

प्र. ३. अतिचार के मुख्य कितने प्रकार है ?

उ. तीन प्रकार हैं - १ कायिक २ वाचिक ३. मानसिक।

प्र. ४. पाठ में दिये गये अतिचार उक्त किन अतिचारों से सम्वन्धित है ।

उ. **उस्सुत्तो** और **उम्मग्गो** वचन सम्बन्धी, **अकप्पो** और **अकरणिज्जो** काया सम्बन्धी और आगे के अतिचार प्रायः मन सम्बन्धी हैं ।

प्र. ५. श्रावक के कितने व्रत हैं ?

उ. श्रावक के बारह व्रत हैं - पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत ।

प्र. ६. अणुव्रत किसे कहते हैं ?

उ. महाव्रतों की अपेक्षा छोटे व्रतों को अणुव्रत कहते है
महाव्रतों में हिंसादि पापों का सम्पूर्ण त्याग होता है
अणुव्रतों में मर्यादित त्याग होता है ।

प्र. ७. पांच अणुव्रत कौनसे हैं ?

उ. १. स्थूल (मोटी) हिंसा का त्याग २. स्थूल झूठ
त्याग ३. स्थूल चोरी का त्याग ४. स्वस्त्री सन्तोष
पर स्त्री सेवन का त्याग ५. इच्छा परिमाण अर्थात् परि
का परिमाण करना ।

प्र. ८. गुण व्रत किसे कहते हैं ?

उ. जो अणुव्रतों को गुण अर्थात लाभ पहुँचाते हैं, उन्हें
व्रत कहते हैं ।

प्र. ९. किन व्रतों को गुण व्रत कहा है ?

उ. १. दिशा परिमाण व्रत २. उपभोग परिभोग परिमाण
३. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत को गुण व्रत कहा है ।

प्र. १०. शिक्षा व्रत किसे कहते हैं ?

उ. कर्म क्षय की शिक्षा देने वाले व्रतों को या मोक्ष प्राप्ति
लिए अभ्यास कराने वाली क्रियाओं की शिक्षा देने व
व्रतों को शिक्षा व्रत कहते हैं ।

प्र. ११. कौन से व्रत शिक्षा व्रत हैं ?

उ. १. सामायिक व्रत २. देशावकाशिक व्रत ३. पौषध
४. अतिथि संविभाग व्रत ।

प्र. १२. अकल्पनीय व अकरणीय में क्या अन्तर है ?

उ. सावद्य भाषा बोलना आदि प्रवृत्तियां "अकल्पनीय"
तथा अयोग्य सावद्य आचरण करना "अकरणीय" है
इस प्रकार अकल्पनीय में अकरणीय का समावेश

सकता है । पर अकल्पनीय का समावेश अकरणीय में नहीं होता ।

१३. खण्डित और विराधित में क्या अन्तर है ?

व्रत का एकांश भंग खंडित और सर्वांश भंग विराधित कहलाता है ।

१४. "मिच्छामि दुक्कडं" का क्या अर्थ है ?

द्रव्य भाव से नम्र बनकर, चारित्र की मर्यादा में स्थिर रहकर किये हुए पापों को उपशम भाव से दूर करता हूँ । एवं मेरा पाप निष्फल हो ।

३. ज्ञानातिचार सूत्र

(आगमे तिविहे का पाठ)

आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इन तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं जं-वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइयं, सज्झाइए न सज्झाइयं भणतां, गुणतां, विचारतां ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

मूल शब्द	अर्थ
आगमे	आगम
त्तिविहे पण्णत्ते	तीन प्रकार का कहा है
तं जहा	वह इस प्रकार है
सुत्तागमे	सूत्र रूप आगम
अत्थागमे	अर्थ रूप आगम
तदुभयागमे	सूत्र-अर्थ उभय रूप आगम
जं	जो यदि
वाइद्धं	पाठ आगे पीछे (व्याविद्ध) बोला
वच्चामेलियं	अन्य सूत्र का पाठ अन्य सू (व्यत्याम्रेडित)मिलाया हो
हीणक्खरं	अक्षर छोड़ दिये हों
अच्चक्खरं	अक्षर बढा दिये हों
पयहीणं	पद छोड़ दिये हों
विणयहीणं	विनय रहित पढा हो
जोग-हीणं	योगहीन (मन, वचन, काया की स्थि न रखकर) पढा हों
घोसहीणं	घोषहीन पढ़ा हो (शुद्ध उच्चारण बिना पाठ बोले हों)
सुट्ठुदिण्णं	शिष्य में शास्त्र ग्रहण करने की शक्ति हो उससे अधिक पढाया हो
दुट्ठुपडिच्छियं	दुष्ट भाव से ग्रहण किया हो
अकाले कओ सज्झाओ	अकाल में स्वाध्याय किया हो
काले न कओ सज्झाओ	काल में स्वाध्याय न किया हो



ज्झाइए सज्झाइयं	अस्वाध्याय में स्वाध्याय किया हो
ाइए न सज्झाइयं	स्वाध्याय में स्वाध्याय न किया हो
तां	वाचना, पृच्छना और धर्म कथा करते हुए
तां	परिवर्तना करते (फेरते) हुए
ारतां	अनुप्रेक्षा (चिन्तन) करते हुए

प्रश्नोत्तर

१. आगमे तिविहे पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

ज्ञान के अतिचारो का पाठ ।

२. आगम किसे कहते हैं ?

जिससे पड् द्रव्य, जीवादि नव तत्त्वों और हेय ज्ञेय उपादेय का सम्यग्ज्ञान हो, उसे आगम (सिद्धांत) कहते है ।

३. आगम कितने प्रकार के बताये हैं ?

तीन प्रकार के –१. सूत्रागम २. अर्थागम ३. तदुभयागम ।

४. सूत्रागम किसे कहते है ?

तीर्थकरो के श्री मुख से सुनकर गणधरादि ने जिन-आचारांग आदि आगमो की रचना की है, उस सूत्र रूप आगम को सूत्रागम कहते हैं ।

५. अर्थागम किसे कहते हैं ?

तीर्थकरों ने अपने श्री मुख से जो भाव प्रकट किये हैं, उस अर्थ रूप आगम को अर्थागम कहते हैं । सूत्रों के अनुवाद को भी अर्थागम कहा गया है ।

६. तदुभयागम का क्या अर्थ है ?

उ. सूत्र और अर्थ रूप आगम को तदुभयागम कहते हैं ।

प्र. ७. वाइद्धं (व्याविद्ध) पढ़ना किसे कहते हैं ?

उ. सूत्र को तोड़ कर मणियों को बिखरने के समान अक्षर मात्रा, व्यञ्जन, अनुस्वार, पद, आलापक आ उलट-पुलट कर पढ़ना वाइद्धं-व्याविद्ध अतिचार ऐसा पढ़ने से शास्त्र की सुन्दरता नहीं रहती है तथ का बोध भी अच्छी तरह नहीं होता ।

प्र. ८. वच्चामेलियं-व्यत्याम्रेडित अतिचार क्या है ?

उ. सूत्रों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर आये हुए समानार्थक को एक साथ पढ़ना वच्चामेलियं अतिचार है । शास्त्र भिन्न-भिन्न पदों को एक साथ पढ़ने से अर्थ बिगड़ है । विराम आदि लिये बिना पढ़ना अथवा अपनी से सूत्र के समान सूत्र बनाकर आचारांग आदि सू डाल कर पढ़ने से भी यह अतिचार लगता है ।

प्र. ९. हीनाक्षर पढ़ना किसे कहते हैं ?

उ. इस तरह से पढ़ना कि जिससे कोई अक्षर छूट हीनाक्षर कहलाता है । जैसे -"**नमो आयरियाणं**" स्थान पर "य" अक्षर कम करके "**नमो आरिया** पढ़ना ।

प्र. १०. अच्चक्खरं क्या है ?

उ. अधिकाक्षर-अधिक अक्षर युक्त पढ़ना-पाठ के बी कोई अक्षर अपनी तरफ से मिला देना जैसे-" **उवज्झायाणं**" में "रि" अक्षर मिलाकर " **उवज्झारियाणं**" पढ़ना ।

११. पयहीणं का क्या अर्थ है ?
किसी पद को छोड़कर पढ़ना पयहीणं अतिचार है । जैसे -''**नमो लोए-सव्वसाहूणं**'' मे ''लोए'' पद कम करके ''**नमो सव्वसाहूणं**'' पढ़ना ।

१२. ये पाँचों किसके अतिचार हैं ?
उच्चारण सम्बन्धी अतिचार है ।

१३. उच्चारण की अशुद्धि से क्या हानि है ?
कई बार - १. अर्थ सर्वथा नष्ट हो जाता है २. विपरीत अर्थ हो जाता है ३. कई बार आवश्यक अर्थ में कमी रह जाती है ४. कई बार अधिकता हो जाती है ५. कई बार सत्य किन्तु अप्रासंगिक अर्थ हो जाता है । इस प्रकार हानियाँ है । अतः उच्चारण शुद्ध करना चाहिये ।

१४ उच्चारण शुद्धि के लिए क्या करना चाहिए ?
उच्चारण शुद्धि के लिए - १ सूत्र के एक-एक अक्षर, मात्रा आदि को ध्यान से पढ़ना चाहिये २. ध्यान से कण्ठस्थ करना चाहिये और ध्यान से फेरना चाहिये, ऐसा करने से उच्चारण प्रायः शुद्ध होता है ।

१५ विणयहीणं अतिचार क्या है ?
विणयहीणं-विनयहीन अर्थात् शास्त्र तथा पढ़ाने वाले का समुचित विनय न करना । ज्ञान और ज्ञान दाता के प्रति,ज्ञान लेते समय तथा ज्ञान लेने के बाद में विनय (वंदनादि) नही करके अथवा सम्यग् विनय नहीं करके पढ़ना विणयहीणं अतिचार है।

१६ जोगहीणं (योगहीन) अतिचार किसे कहते हैं ?

उ. जोगहीणं-योगहीन अर्थात् सूत्र पढ़ते समय मन, वचन और काया को जिस प्रकार स्थिर रखना चाहिए, उस प्रकार नहीं रखना। योगों को चंचल रखना, अशुभ व्यापार में लगाना और ऐसे आसन से बैठना, जिससे शास्त्र की आशातना हो, अथवा योग का अर्थ उपधान तप भी होता है । सूत्रों को पढ़ते हुए किया जाने वाला एक विशेष तप उपधान कहलाता है । उस उपधान (तप) का आचरण किये बिना सूत्र पढ़ना योगहीन दोष कहलाता है ।

प्र. १७. घोसहीणं दोष क्या है ?

उ. घोसहीणं-घोषहीन अर्थात् उदात्त ❀ अनुदात्त ✳, स्वरित✳, सानुनासिक ✳ और निरनुनासिक ✳ आदि घोषों से रहित पाठ करना । किसी भी स्वर या व्यंजन को घोष के अनुसार ठीक न पढ़ना, अथवा ज्ञान दाता जिस शब्द छन्द पद्धति से उच्चारण करावे, वैसा उच्चारण करके नही पढ़ना घोसहीणं दोष है ।

प्र. १८. ये तीनों किसके अतिचार हैं ?

उ. ये पढ़ने की अविधि सम्बन्धी अतिचार हैं ।

प्र. १९. इनसे क्या हानि होती हैं ?

उ. विनयहीनता से प्राप्त ज्ञान यथा समय काम नही आता-

❀ उदात्त- ऊँचे स्वर से पाठ करना ।

✳ अनुदात्त-नीचे स्वर से पाठ करना।

✳ स्वरित-मध्यम स्वर से पाठ करना ।

✳ सानुनासिक - नासिका और मुख दोनो से उच्चारण करना ।

✳ निरनुनासिक-बिना नासिका के केवल मुख से उच्चारण करना।

सफल नही होता । योगहीनता से ज्ञान की प्राप्ति शीघ्र नहीं होती। शुद्ध आवर्तन नही होता, आलोचना प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ सफल नही होती । घोषहीनता से सूत्र का आत्मा पर पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता । अतः तीनो अतिचारो को दूर करना चाहिए ।

०. सुट्ठुदिण्ण किसे कहते हैं ?

यहां "सुट्ठु" शब्द का अर्थ है - शक्ति या योग्यता से अधिक। शिष्य मे शास्त्र ग्रहण करने की जितनी शक्ति है उससे अधिक पढ़ाना 'सुट्ठुदिण्णं' कहलाता है ।

१. दुट्ठुपडिच्छियं किसे कहते है ?

आगम को बुरे भाव से ग्रहण करना ।

२ अकाल स्वाध्याय किसे कहते है ?

जिस काल मे (चार संध्याओ मे) सूत्र स्वाध्याय नही करना चाहिये या जो कालिक सूत्रादि जिस काल (दिन रात्रि के दूसरे तीसरे प्रहर) मे नही पढ़ना चाहिए, उस काल मे स्वाध्याय करने को अकाल स्वाध्याय कहते हैं । (सूत्रो के दो प्रकार हैं - कालिक ✡ और उत्कालिक ❖। कालिक सूत्रो को दिन और रात्रि के पहले और अंतिम प्रहर मे ही पढना चाहिये । इस समय के अतिरिक्त पढ़ना अतिचार है)

✡ जिन सूत्रो को पढने के लिए निश्चित समय का विधान हो, वे ...लक कहे जाते है । जैसे - उ...राध्ययन, निशीथ, व्यवहार आदि ।

❖ जिन सूत्रो के लिए समय की कोई मर्यादा नहीं हैं, वे "उत्कालिक" ... जाते हैं। जैसे -दशवैकालिक, नंदी, प्रज्ञापना आदि ।

प्र. २३. "काले न कओ सज्झाओ" अतिचार क्या है ?

उ. जिस सूत्र के लिए जो काल निश्चित किया गया है, उ समय स्वाध्याय न करना दोष है ।

प्र. २४. अकाल स्वाध्याय और काल अस्वाध्याय से क्या हानि है

उ. जैसे जो राग या रागिनी जिस काल में गाना चाहि उससे भिन्न काल में गाने से अच्छी नहीं लगती है, वै ही अकाल स्वाध्याय से भगवान् की आज्ञा का उल्लं व अहित होता है तथा यथाकाल स्वाध्याय नहीं करने ज्ञान में हानि तथा अव्यवस्थितता का दोष होता है इसलिये ये अतिचार वर्ज्य हैं ।

प्र. २५ असज्झाइए सज्झाइयं किसे कहते हैं ?

उ. अस्वाध्याय अर्थात् ऐसा कारण या समय उपस्थित हो जिसमे शास्त्र का स्वाध्याय वर्जित है, उसमें स्वाध्य करना, असज्झाइए सज़्झाइयं अतिचार है । अस्वाध्य के ३४ कारण कहे गये हैं ।

प्र. २६. सज्झाइए न सज्झाइयं अतिचार क्या है ?

उ. सज्झाइए न सज्झाइयं अर्थात् स्वाध्याय काल में स्वाध्य न करना दोष है ।

प्र. २७. अस्वाध्याय में स्वाध्याय और स्वाध्याय में अस्वाध्याय क्या हानि है ?

उ. अशुचि आदि में स्वाध्याय करने से ज्ञान के प्रति अना होता है, लोक निन्दा होती है । विषम समय में स्वाध्य से देवकोप आदि हानि होती है ।

दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरहंतो ❀ महदेवो, जावज्जीवाए ❀ सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥ १ ॥
परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावण्ण कुदंसणवज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा ॥ २ ॥

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं - संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो इस प्रकार श्री सम्यक्त्व रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं - १ वीतराग के वचन में शंका की हो २ परदर्शन की आकांक्षा की हो ३ धर्म के फल में संदेह किया हो या त्यागवृत्ति के कारण शरीर वस्त्रादि मलिन देखकर सन्त सतियों से घृणा की हो ४ परपाखंडी की प्रशंसा की हो ५ परपाखंडी का परिचय किया हो एवं मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मैल लगा हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
अरहंतो महदेवो	अर्हत (अरिहन्त) मेरे देव हैं
जावज्जीवाए	जब तक जीवन है

पाठान्तर - ❀ अरिहंतो ❀ जावज्जीवं

सुसाहुणो गुरुणो	श्रेष्ठ साधु गुरु हैं
जिण पण्णत्तं	वीतराग देव द्वारा प्ररूपित
तत्तं	तत्त्व (धर्म) है
इअ सम्मत्तं	इस प्रकार का सम्यक्त्व
मए गहियं	मैंने ग्रहण किया है
परमत्थ	परमार्थ (नव तत्त्व) का
संथवो वा	संस्तव (ज्ञान) करना
सुदिट्ठ-परमत्थ	परमार्थ के अच्छे जानकारों की
सेवणा वा वि	सेवा (प्रशंसा-परिचय)करना
वावण्ण य	सम्यक्त्व भ्रष्ट व्यापन्न और
कुदंसण	कुदर्शन (अन्यमती) की
वज्जणा	वर्जना संगति (प्रशंसा-परिचय)
सम्मत्त	ये चार कार्य सम्यक्त्व के
सद्दहणा	श्रद्धान हैं
इअ सम्मत्तस्स	इस प्रकार सम्यक्त्व के
पंच अइयारा पेयाला	पांच प्रधान अतिचार
जाणियव्वा	जानने योग्य है
न समायरियव्वा	आचरण करने योग्य नहीं हैं
तंजहा	वे इस प्रकार हैं
ते आलोउं	उनकी आलोचना करता हूँ
संका	श्री जिन-वचन मे शंका की हो,
कंखा	पर दर्शन की आकांक्षा की हो
वितिगिच्छा	धर्म के फल में संदेह किया हो या त्याग वृत्ति के कारण शरीर-वस्त्र आदि मलि देखकर संत-सतियों से घृणा की हो

परपासंड-पसंसा पर-पाखण्डी (अन्य मती)की प्रशंसा की हो

परपासंड- संथवो पर-पाखण्डी का परिचय किया हो

प्रश्नोत्तर

प्र १. इस पाठ मे किसका स्वरूप बताया है ?

उ. सम्यक्त्व का ।

प्र. २ अर्हत ही को देव क्यो कहा गया है ?

उ क्योकि वे अज्ञान, निद्रा, मोह, मिथ्यात्व, अविरति, कुदर्शन व घाती कर्मो से रहित हो कर परम वीतरागी सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थकर भगवान् होते हैं । जिनको देवाधिदेव भी कहते हैं। ऐसे गुण अन्य देवों मे नही होते हैं ।

प्र ३. सुसाधु किसे मानना चाहिये ?

उ जिनेश्वर भगवान् के मार्ग पर चलने वाले, पंच महाव्रत के धारक, पांच समिति तीन गुप्ति के आराधक, छह काया के रक्षक, तप एवं संयम युक्त जीवन व्यतीत करने वाले साधुओ को सुसाधु कहते हैं ।

प्र ४. हमारा धर्म कौनसा है ?

उ. जिनेश्वर भगवन्तो द्वारा प्ररूपित जैन धर्म ही हमारा सच्चा धर्म है।

प्र. ५ परमार्थ किसे कहते हैं ?

उ नवतत्त्व को परमार्थ कहते हैं ।

प्र. ६. परमार्थ का परिचय क्यो आवश्यक है ?

उ. इससे जीव अजीव का ज्ञान होता है । कर्म का स्वरूप

समझ में आता है और आत्मोन्नति करने की विधि मालूम होती है।

प्र. ७. परमार्थ के जानने वालों की सेवा से क्या लाभ है ?

उ. इनसे नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती है । शंका का निवारण होता है । सत्यासत्य का निर्णय होता है । अतिचार शुद्धि होती है। नई प्रेरणा मिलती है । ज्ञान दर्शन चारित्र निर्मल व दृढ़ होता है ।

प्र. ८. सम्यक्त्व से भ्रष्ट और अन्य मतियों की संगति क्यो त्याज्य है ?

उ सम्यक्त्व की हानि होती है और मिथ्यात्व की प्राप्ति हो सकती है ।

प्र. ९. क्या इनकी संगति का त्याग सबको करना चाहिये ?

उ. हां, सबको करना चाहिये, क्योंकि यह समकित का अतिचार है । कोई विशिष्ट ज्ञानी मिथ्यात्वी को सद्बोध देकर सन्मार्ग पर लाने के लिए ज्ञान चर्चा कर सकता है।

प्र. १०. जिन वचनों में शंका क्यों होती है, उसे कैसे दूर करना चाहिये ?

उ. १. बुद्धि की न्यूनता के कारण २. सम्यक् रूप से समझाने वाले गुरुओं के अभाव में ३. जीव-अजीवादि भावों का गहन स्वरूप होने से ४. ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से अथवा ५. हेतु दृष्टांत आदि समझने के साधनो के अभाव में कोई विषय यथार्थ रूप से समझने में नही आ पाता है तो शंका की संभावना रहती है । ऐसी स्थिति में जीव भगवान् के केवलज्ञान और वीतरागता का विचार

करके, अपनी बुद्धि की मंदता को सोचकर शंका दूर करे। तथा यह सोचे कि –"**तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं**" – जिनेश्वर भगवान् ने जो प्ररूपित किया है वही यथार्थ है, सत्य है । क्योंकि भगवान् राग, द्वेष, मोह और अज्ञान से अतीत (रहित) है । अतः भगवान् का वचन पूर्णतः सत्य ही है ।

प्र. ११. परमत ग्रहण करने की आकांक्षा क्यों होती है ?

उ. अन्य मतियों के आडम्बर, पूजा, चमत्कार आदि देखकर।

प्र. १२. ऐसी आकांक्षा का निवारण कैसे किया जा सकता है ?

उ. यह स्पष्ट समझना चाहिये कि आडम्बरादि प्रवृत्तियों में छह काया के जीवो का आरम्भ होता है । आरम्भ समारम्भ धर्म नहीं है, अतः इनकी चाह करना दोष है ।

प्र. १३. "पर-पाखण्डी प्रशंसा" किसे कहते है ?

उ. अन्य मत के सिद्धान्त, शास्त्र और साधुओं की प्रशंसा करना।

प्र. १४. पर-पाखण्डी परिचय का क्या अर्थ है ?

उ. अन्य मत के साधुओं या विशिष्ट व्यक्तियों के साथ आलाप, संलाप, संवास, परिचर्यादि करना और उनके ग्रन्थो का अध्ययन करना ।

बारह व्रतों के अतिचार

पहला व्रत – स्थूल प्राणातिपात विरमण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं–१. रोष वश कठोर (गाढ़ा) बन्धन से बांधा हो, २. क्रूरता पूर्वक

माप किया हो, ५. वस्तु में मिलावट (भेल-संभेल) की हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

चौथा व्रत - स्वदार-संतोष ❖ परदारविवर्जन रूप मैथुन विरमण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं १. इत्तरियपरिग्गहिया (इत्वरिकपरिगृहीता) से गमन किया हो, २. अपरिग्गहिया (अपरिगृहीता) से गमन किया हो, ३. अनंगक्रीड़ा की हो, ४. पराये का विवाह-नाता कराया हो, ५. काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।)

पांचवां व्रत-स्थूलपरिग्रह विरमण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं- १. क्षेत्र-वास्तु (खेत्त-वत्थु) का परिमाण अतिक्रमण किया हो, २. हिरण्य-सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण (उल्लंघन) किया हो, ३. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ४. द्विपद-चतुष्पद (दोपद-चौपद) का परिमाण

❖ "स्वदार सतोप-परदारविवर्जन रूप" ऐसा पुरुप को बोलना चाहिए । ओर स्त्री को "स्वपति संतोप परपुरुप विवर्जन रूप" ऐसा बोलना चाहिए । इसी पकार 'इत्तरियपरिग्गहिया' तथा 'अपरिग्गहिया' के स्थान पर स्त्रियों को 'इत्तरियपरिग्गहिय' तथा 'अपरिग्गहिय' शव्द बोलना चाहिए ।

अतिक्रमण किया हो, ५ कुप्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं)

छठा व्रत-दिशापरिमाण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं-१. ऊंची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, २. नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ३. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, ४. क्षेत्र बढ़ाया हो, ५. क्षेत्र परिमाण के भूल जाने से पथ का सन्देह पड़ने पर आगे चला हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं ।)

सातवां व्रत- उपभोग-परिभोग परिमाण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं - १. पच्चक्खाण उपरांत सचित्त का आहार किया हो, २. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, ३. अपक्व का आहार किया हो, ४. दुष्पक्व का आहार किया हो, ५. तुच्छौषधि❁ का आहार किया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

❁ जिसमे खाने योग्य अंश तो थोड़ा हो और अधिक फेकना पडे उसे "तुच्छौषधि" कहते हैं जैसे - मूंग की कच्ची फली, सीताफल, गन्ना (गंडेरी) आदि ।

पन्द्रह कर्मादान - जो श्रावक (श्राविका) को जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं, वे इस प्रकार हैं - १. इंगालकम्मे, २. वणकम्मे, ३. साडीकम्मे ४. भाडीकम्मे, ५. फोडीकम्मे, ६. दंतवाणिज्जे, ७. लक्खवाणिज्जे, ८. केसवाणिज्जे, ९. रसवाणिज्जे, १०. विसवाणिज्जे, ११. जंतपीलणकम्मे, १२ णिल्लंछणकम्मे, १३. दवग्गिदावणया, १४. सर-दह-तलाय-सोसणया, १५. असई-जण-पोसणया, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

आठवाँ व्रत- अनर्थदण्ड विरमण में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं- १. काम-विकार जगाने वाली कथा की हो, २. भंड-कुचेष्टा की हो, ३. मुखरी वचन बोला हो, ४. अधिकरण* जोड़ रखा हो, ५. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

नववाँ व्रत - सामायिक में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं - १. मन, २. वचन और ३. काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, ४. सामायिक की

---

* अधिकरण-आरम्भ के साधन-ऊखल, मुसल, हथियार, औजार आदि ।

स्मृति न रखी हो, ५. समय पूर्ण हुए बिना सामायिव पारी हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दो लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

दसवाँ व्रत - देशावकाशिक में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं- १. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मंगवाई हो, २ भिजवाई हो, ३. शब्द बोल कर चेताया हों, ४. रूप दिखा कर के अपने भाव प्रकट किये हो, ५. कंकर आदि फैंक कर दूसरों को बुलाया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

ग्यारहवाँ व्रत - प्रतिपूर्ण-पौषध में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोऊं -१. पौषध में शय्या-संस्तारक की प्रतिलेखना न की हो या अच्छी तरह से न की हो, २. शय्या- संस्तारक का प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, ३. उच्चार-प्रश्रवण की भूमि को न देखी हो या अच्छी तरह से न देखी हो, ४ उच्चार-प्रश्रवण की भूमि को पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूंजी हो, ५. पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

बारहवाँ व्रत - अतिथिसंविभाग में जो कोई

ति लगा हो तो आलोऊं - १. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, २. अचित्त वस्तु सचित्त से ढकी हो, ३. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल दिया हो, ४. अपनी वस्तु दूसरों की कही हो, या आप सूझता होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो, ५. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो, इस प्रकार दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोष लगा हो तो तस्स आलोउं (तस्स मिच्छामि दुक्कडं)

संलेखना के पाँच अतिचारों का पाठ

अंतिम मरण समय सम्बन्धी संलेखना [कषाय और शरीर को कृश करने के लिये किया जाने वाला तप विशेष] के विषय में कोई दोष लगा हो तो आलोचना करता हूँ - १. मैंने राजा चक्रवर्ती आदि के इस लोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, २. देव इन्द्र आदि के परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा की हो, ३. प्रशंसा होने पर बहुत काल तक जीवित रहने की इच्छा की हो, ४. दुःख से व्याकुल हो कर शीघ्र मरने की अभिलाषा की हो तथा ५. कामभोग की अभिलाषा की हो और मृत्यु समय पर्यन्त मेरी श्रद्धा

प्ररूपणा में फर्क न हो इस प्रकार दिवस सम्बन्धी व
अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

(अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा
आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा
तंजहा ते आलोऊं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगा-
संसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे,
कामभोगासंसप्पओगे मा मज्झ हुज्ज मरणंते वि सड्ढा
परूवणम्मि अण्णहा भावो जो मे देवसिओ अइयारो
कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।)

अतिचारों का समुच्चय पाठ

इस प्रकार १४ ज्ञान के, ५ समकित के, ७५
बारह व्रतों के और ५ संलेखना के - इन ९९ अतिचारों
में से दिवस सम्बन्धी जो कोई अतिचार दोष लगा हो
तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

अठारह पाप स्थान का पाठ

अठारह पापस्थान आलोऊँ - १. प्राणातिपात,
२. मृषावाद, ३. अदत्तादान ४. मैथुन, ५. परिग्रह,
६. क्रोध, ७. मान, ८. माया. ९. लोभ १०. राग,
११. द्वेष, १२. कलह, १३. अभ्याख्यान, १४. पैशुन्य,
१५. परपरिवाद, १६. रति-अरति, १७. माया-मृषावाद,

१८. मिथ्यादर्शन शल्य । इन अठारह पापस्थानों में से किसी पाप का सेवन किया हो, सेवन कराया हो और सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
प्राणातिपात	जीवहिंसा, प्राणियों का वध
मृषावाद	असत्य, झूठ
अदत्तादान	चोरी (बिना दिये ग्रहण करना)
मैथुन	अब्रह्मचर्य, कुशील
परिग्रह	मूर्च्छा, ममत्व, धनादिक द्रव्य
क्रोध	रोष, गुस्सा, कोप
मान	अहंकार, घमण्ड
माया	छल, कपट
लोभ	लालच, तृष्णा
राग	माया और लोभ जन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम
द्वेष	क्रोध और मान जन्य आत्मा का वैभाविक परिणाम
कलह	क्लेश, झगड़ा
अभ्याख्यान	झूठा आल देना, कलंक लगाना
पैशुन्य	दूसरे की चुगली करना, दोष प्रकट करना
पर-परिवाद	दूसरे की निन्दा करना, दूसरे की बुराई करना

रति-अरति	बुरे कार्यों में चित्त का लगना और ध्या संयम आदि में चित्त का न लगना
माया-मृषावाद	कपट सहित झूठ बोलना
मिथ्यादर्शनशल्य	अतत्त्व में तत्त्व और तत्त्व में अतत्त्व की श्रद्धा होना, श्रद्धा का विपरीत होना

प्रश्नोत्तर

प्र. १. अठारह पापों में सबसे बड़ा पाप कौनसा है ?

उ. अठारहवाँ-मिथ्यादर्शनशल्य पाप सबसे बड़ा (भयंकर) है।

प्र. २. इन्हें पापस्थान क्यों कहा है ?

उ. ये सेवन करने योग्य नहीं हैं, इनका आचरण करने से महा अशुभ कर्मो का बन्ध होता है । आत्मा दुर्गति में पड़ती है।

प्र. ३. पापों का स्वरूप समझने की क्या आवश्यकता है?

उ. पाप कार्यो से बचा जा सकता है और धर्म व पुण्य के कार्य में प्रवृत्ति की जा सकती है ।

प्र. ४. परिग्रह और लोभ में क्या अन्तर है ?

उ. प्राप्त वस्तु को ग्रहण करना और उसके प्रति ममत्व रखना परिग्रह है एवं अप्राप्त वस्तु की चाह करना लोभ है ।

प्र. ५. रति और अरति पाप का क्या स्वरूप है ?

उ. मनोज्ञ विषयों पर राग और संयम विरुद्ध कार्यो में आनन्द मानने को 'रति' तथा अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष और संयम संबन्धी कार्यों में उदासीनता को "अरति" कहते हैं ।

कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ

कायोत्सर्ग में आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, मन, वचन काया चलित हुए हों, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

इच्छामि खमासमणो का पाठ

(द्वादशावर्त्त गुरु-वन्दन सूत्र)

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए ! अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीही, अहो-कायं कायसंफासं खमणिज्जो भे ! किलामो, अप्पकिलंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो ?❂ जत्ता भे ? जवणिज्जं च भे ? खामेमि खमासमणो ! देवसियं वइक्कमं ❀ आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं

❂ "दिवसो वइक्कंतो" के स्थान पर रात्रि प्रतिक्रमण में "राइ वइक्कंता" पाक्षिक प्रतिक्रमण में "दिवसो पक्खो वइक्कंतो" चौमासी प्रतिक्रमण मे "चउम्मासो वइक्कंतो" एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरो वइक्कंतो" पाठ बोलना चाहिए ।

❀ "देवसियं वइक्कम" के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण में "राइय वइक्कम" पाक्षिक प्रतिक्रमण मे "देवसियं पक्खियं वइक्कमं" चौमासी प्रतिक्रमण मे "चउम्मासियं वइक्कम" और संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरियं वइक्कम" – ऐसा पाठ बोलना चाहिये।

देवसियाए आसायणाए ❀ तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए, कोहाए, माणाए, मायाए, लोहाए, सव्वकालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्वधम्माइक्कमणाए, आसायणाए, जो मे देवसिओ अइयारो ✡ कओ, तस्स खमासमणो! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

मूल शब्द	अर्थ
खमासमणो	हे क्षमाश्रमण ! (क्षमा आदि दस धर्म युक्त)
जावणिज्जाए	शक्ति के अनुसार
निसीहियाए	अपने योगों को पाप कर्म से हटाकर
वंदिउं	वन्दना करना
इच्छामि	चाहता हूँ
मे	मुझको
मिउग्गहं	आपकी परिमित भूमि (अवग्रह) में प्रवेश करने की
अणुजाणह	आज्ञा दीजिये

❀ "देवसियाए आसायणाए" के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण में "राइयाए आसायणाए" पाक्षिक प्रतिक्रमण में "देवसियाए पक्खियाए आसायणाए" चौमासी प्रतिक्रमण में "चउम्मासियाए आसायणाए" और संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरियाए आसायणाए" पाठ बोलना चाहिये ।

✡ "देवसिओ अइयारो" के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण मे "राइओ अइयारो" पाक्षिक प्रतिक्रमण में "देवसिओ पक्खिओ अइयारो", चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में "चाउम्मासिओ अइयारो", संवत्सरी प्रतिक्रमण में "संवच्छरिओ अइयारो" पाठ बोलना चाहिये ।

(गुरु की और से आज्ञा होने पर गुरु के समीप बैठकर)

निसीहि	अशुभ क्रिया को रोक कर
अहो कायं	आपके (दोनों) चरणों का
काय संफासं	अपनी काया (मस्तक और हाथ) से स्पर्श करता हूँ
भे	आपको
किलामो	(मेरे स्पर्श से) जो बाधा (पीड़ा) हुई
खमणिज्जो	(उसे) क्षमा करें

(शरीर की साता की पृच्छा)

अप्पकिलंताणं	बिना देह ग्लानि के (रोगादि से रहित)
भे	आपश्री का
बहुसुभेणं	बहुत सुख शान्ति पूर्वक
दिवसो वइक्कंतो	आज का दिन बीता ?

(संयम यात्रा की पृच्छा)

भे	आपकी
जत्ता	संयम यात्रा (निर्बाध है ?)
च	और
भे	आपका शरीर
जवणिज्जं	मन तथा इन्द्रियों की पीड़ा से रहित है ?

(अपने अपराधों की क्षमा याचना)

खमासमणो	हे क्षमा श्रमण !
देवसियं	(मैं)दिवस सम्बन्धी

वइक्कमं	अपने अपराध को
खामेमि	खमाता हूँ
आवस्सियाए	आवश्यक क्रिया (अपराधों का चिन्त करने के लिए
पडिक्कमामि	निवृत्त होता हूँ
खमासमणाणं	आप क्षमा श्रमण की
देवसियाए	दिवस सम्बन्धी
तित्तीसन्नयराए	तेतीस आशातनाओं में से किसी भी
आसायणाए	आशातना के द्वारा
जं किंचि	जिस किसी भी
मिच्छाए	मिथ्याभाव से की हुई
मणदुक्कडाए	दुष्ट मन से की हुई
वयदुक्कडाए	दुष्ट वचन से की हुई
कायदुक्कडाए	शरीर की दुश्चेष्टाओं से की हुई
कोहाए	क्रोध से की हुई
माणाए	मान से की हुई
मायाए	माया से की हुई
लोहाए	लोभ से की हुई
सव्वकालियाए	सब काल में की हुई
सव्व मिच्छोवयाराए	सब प्रकार के मिथ्याभावो से पूर्ण
सव्व धम्माइक्कमणाए	सब धर्मो का उल्लंघन करने वाली
आसायणाए	आशातना से
जे	जो भी

मे	मैंने
अइयारो	अतिचार
कओ	किया हो
तस्स	उसका
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
निन्दामि	उसकी निन्दा करता हूँ
गरिहामि	गुरु साक्षी से निन्दा करता हूँ
अप्पाणं	(अपनी आशातना करने वाली) आत्मा का
वोसिरामि	पूर्ण रूप से परित्याग करता हूँ ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. इच्छामि खमासमणो का पाठ क्यों बोला जाता है ?

उ. गुरु महाराज को वन्दन करने के लिये तथा की हुई आशातना की क्षमा याचना करने के लिये इच्छामि खमासमणो का पाठ बोला जाता है ।

प्र. २ इस पाठ का दूसरा नाम क्या है ?

उ. उत्कृष्ट वन्दन का पाठ या द्वादशावर्त गुरु वन्दन का पाठ।

प्र. ३. क्षमाश्रमण का क्या अर्थ है ?

उ. क्षमाश्रमण दो शब्दो से मिल कर बना है । "क्षमा" का अर्थ है – सहन करना । श्रमण का अर्थ है – जो संसार के कष्टों से खेद प्राप्त करे अथवा जो तप करे, उसे श्रमण कहते हैं । क्षमा प्रधान श्रमण क्षमाश्रमण कहलाता है अर्थात् क्षमा पूर्वक जो तप करे, वह क्षमाश्रमण है ।

प्र. ४. वन्दनीय गुरु कौन हैं ?

उ. जो श्रमण (साधु) क्षमा मार्दव आदि महान् आत्मगुणो संपन्न है और जो प्रभु की आज्ञानुसार अपने धर्म पथ दृढ़ता के साथ अग्रसर हैं, वे ही वंदनीय हैं ।

प्र. ५. अवग्रह किसे कहते हैं ।

उ. गुरुदेव के चारों ओर चारों दिशाओं मे शरीर प्रमाण माप वाली भूमि अवग्रह कहलाती है । शरीर प्रमाण साढ़े तीन हाथ का क्षेत्रावग्रह होता है ।

प्र. ६. सर्वकाल की आशातना से क्या आशय है ?

उ. इस भव में की हुई, हो रही और होने वाली भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सभी आशातनाओं के लिए "**सव्वकालिया**" (सर्व तीन काल की आशातना) शब्द प्रयोग किया गया है।

प्र. ७. '**सव्वधम्माइक्कमणाए**' से क्या अर्थ है ?

उ. आठ प्रवचन माता के पालन में अथवा सामान्य संयम की आराधना के कार्यो रूप सर्व धर्मानुष्ठान में अतिक्रमण (उल्लंघन) अर्थात् विराधना रूप आशातना के लिए '**सव्वधम्माइक्कमणाए**' लिखा गया है ।

प्र. ८. इच्छामि खमासमणो के पाठ से की जाने वाली वन्दना को उत्कृष्ट वंदना क्यों कहा गया है ?

उ. इच्छामि खमासमणो के पाठ से की जाने वाली वंदना, शब्द और क्रिया दोनों में बढ़कर है । इसलिये इसे उत्कृष्ट वंदना कहते हैं ।

प्र. ९. इच्छामि खमासमणो दो बार क्यों बोला जाता है ?

उ. जिस प्रकार दूत राजा को नमस्कार कर कार्य निवेदन

करता है और राजा से विदा होते समय फिर नमस्कार करता है उसी प्रकार शिष्य कार्य को निवेदन करने के लिये अथवा अपराध की क्षमायाचना करने के लिये गुरु को प्रथम वंदना करता है, खमासमणो देता है और जब गुरु महाराज क्षमा प्रदान कर देते हैं तब शिष्य वंदना करके दूसरा खमासमणो देकर वापिस लौट जाता है । द्वादशावर्त्त वंदन की पूरी विधि दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने से ही संभव है । अतः पूर्वाचार्यों ने दो बार इच्छामि खमासमणो बोलने की विधि बतलायी है ।

प्र.१०. उत्कृष्ट वंदन क्या है ? इसकी विधि कौन से अंग सूत्र मे बतायी गयी है ?

उ द्वादशावर्त्त वन्दन उत्कृष्ट वन्दन है । यह इच्छामि खमासमणो के पाठ से किया जाता है । समवायांग सूत्र के बारहवें समवाय में पाठ है -

दुवालसावत्ते किइकम्मे पण्णत्ते, तं जहा-
दुओणयं जहाजायं किइकम्मं बारसावयं ।
चउसिरं तिगुत्तं च दुपवेसं एगणिक्खमणं ॥

कृतिकर्म-वंदन द्वादश आवर्त्त वाला कहा है । इन बारह आवर्त्तो में अवश्य करने योग्य पच्चीस विधियाँ होती है, वे ये हैं - १. यथाजात मुद्रा २-३ दो सिर नमन ४-१५ बारह आवर्त्तन १६-१९ चार सिर २०-२२ तीन गुप्तियाँ २३-२४ दो प्रवेश और २५ एक निष्क्रमण ।

उपरोक्त विधि दो बार इच्छामि खमासमणो का पाठ बोलने से ही संभव है ।

[तस्स सव्वस्स का पाठ]

[तस्स सव्वस्स देवसियस्स ❀ अइयारस्स दुब्भासि
दुच्चिंतिय दुचिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि ।

मूल शब्द	अर्थ
तस्स सव्वस्स	उस सर्व
देवसियस्स	दिवस सम्बन्धी
अइयारस्स	अतिचार की
दुब्भासिय-दुच्चिंतिय	दुर्वचन, दुष्ट विचार तथा
दुचिट्ठियस्स	काया द्वारा किये गये दुष्ट व्यवहार क
आलोयंतो	आलोचना करता हुआ
पडिक्कमामि	निवृत्त होता हूँ]

चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरहंता ✡ मंगलं, सिद्धा मंगलं, सा
मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तम
अरहंता ✡ लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तम
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सर
पव्वज्जामि, अरहंते ❖ सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सर

❀ "देवसियस्स" के स्थान पर रात्रि के प्रतिक्रमण "राइयस्स" पाक्षिक प्रतिमण में "देवसियस्स पक्खियस्स" चातुर्मा प्रतिक्रमण में "चाउम्मासियस्स" संवत्सरी प्रतिक्रमण मे " सवच्छरियर पाठ बोलना चाहिये ।

पाठान्तर – ✡ अरिहंता, ❖ अरिहंते

पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। अर्हतों का शरणा सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली-प्ररूपित धर्म का शरणा

चार शरणा, दुःख हरणा और न शरणा कोय ।

जो भवी प्राणी आदरे, तो अक्षय अमर पद होय।

मूल शब्द	अर्थ
चत्तारि मंगलं	चार मंगल हैं
अरहंता मंगलं	अर्हत मंगल है
सिद्धा मंगलं	सिद्ध मंगल है
साहू मंगलं	साधु मंगल है
केवलिपण्णत्तो-	केवलि प्ररूपित
धम्मो मंगलं	धर्म मंगल है।
चत्तारि लोगुत्तमा	चार लोक में उत्तम हैं
अरहंता लोगुत्तमा	अर्हत लोक मे उत्तम हैं
सिद्धा लोगुत्तमा	सिद्ध लोक में उत्तम हैं
[illegible]हू लोगुत्तमा	साधु लोक में उत्तम हैं
केवलिपण्णत्तो-	केवलिप्ररूपित
धम्मो लोगुत्तमो	धर्म लोक में उत्तम हैं
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि	चार शरणो को ग्रहण करता हूँ
अरहंते सरणं पव्वज्जामि	अर्हत भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि	सिद्ध भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ
साहू सरणं पव्वज्जामि	साधुओ की शरण ग्रहण करता हूँ
केवलिपण्णत्तं धम्मं	केवलि प्ररूपित्त धर्म की
सरणं पव्वज्जामि	शरण ग्रहण करता हूं

प्रश्नोत्तर

प्र. १. मंगल किसे कहते है ?

उ. जिससे हित की प्राप्ति हो, जो आत्मा को संसार से अलग करता हो, जिससे आत्मा शोभायमान हो, जिससे आनन्द तथा हर्ष प्राप्त होता हो एवं जिसके द्वारा आत्मा पूज्य बनती हो, वह मंगल है ।

प्र. २. उत्तम किसे कहते हैं ?

उ. उत्तम का अर्थ है- ऊंचा होना, विशेष ऊंचा होना, सबसे ऊँचा होना । जिसका उत्थान पुनः पतन की ओर न जाय और न अपने स्नेही को पतन की ओर ले जाय वह वस्तुतः उत्तम होता है । अनंतकाल से भटकती हुई भव्य आत्माओं को उत्थान के पथ पर ले जाने वाले अर्हत सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ही उत्तम हैं।

प्र. ३. केवली प्ररूपित धर्म से क्या आशय है ?

उ. केवलज्ञानी सर्वज्ञों द्वारा कहा हुआ धर्म केवली प्ररूपित धर्म है । जो केवलज्ञानी नहीं हैं वे अनाप्त है और अनाप्त का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता ।

बारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ

१ अहिंसा अणुव्रत

पहला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं
त्रस जीव बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदिय, जान के

पहिचान के संकल्प कर के उसमें सगे-संबन्धी, स्वशरीर के लिए पीड़ाकारी और सापराधी को छोड़ निरपराधी को हनने की बुद्धि (आकुट्टि की बुद्धि) से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहिले व्रत स्थूल-प्राणातिपात विरमण के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊं - बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
थूलाओ	स्थूल (बड़ी)
पाणाइवायाओ	प्राणातिपात (जीव-हिंसा) से
वेरमणं	विरमण (विरति करना, हटाना)
त्रस जीव	चलने फिरने वाले जीव
बेइंदिय	दो इन्द्रिय वाले
तेइंदिय	तीन इन्द्रिय वाले
चउरिंदिय	चार इन्द्रिय वाले
पंचिंदिय	पांच इन्द्रिय वाले
जावज्जीवाए	जीवन पर्यन्त
दुविहं	दो करण
तिविहेणं	तीन योग से
न करेमि	हिंसा नहीं करता हूॅं
न कारवेमि	नही करवाता हूँ



मणसा	मन से
वयसा	वचन से
कायसा	काया से
पेयाला	प्रधान
बंधे	रोषवश कठोर (गाढ़ा) बन्धन बांधा हो,
वहे	क्रूरता पूर्वक मारपीट की हो
छविच्छेए	शरीर के किसी अवयव (चाम आ‍ का छेद किया हो
अइभारे	अधिक भार भरा हो
भत्तपाण-वोच्छेए	आहार पानी बन्द किया हो (खा‍ पीने में रुकावट डाली हो)

प्रश्नोत्तर

प्र. १. प्राणातिपात किसे कहते हैं ?

उ. प्रमादपूर्वक सूक्ष्म और बादर, त्रस और स्थावर र‍ समस्त जीवों के दश प्राणो (पांच इन्द्रिय, मन, वच‍ काया, श्वासोच्छ्वास और आयु) में से किसी भी प्र‍ का अतिपात (नाश) करना प्राणातिपात है ।

प्र. २. सूक्ष्म प्राणातिपात किसे कहते हैं ?

उ. स्थावर जीवो की हिंसा करना, सूक्ष्म प्राणातिपात है ।

प्र. ३. प्रथम अहिंसा अणुव्रत का क्या स्वरूप है ?

उ. स्व शरीर मे पीड़ाकारी, अपराधी तथा सापेक्ष निरपरा‍ के सिवाय शेष बेइन्द्रिय आदि त्रस जीवों की संकल‍

पूर्वक हिंसा का दो करण तीन योग से त्याग करना, स्थूल प्राणातिपात त्याग रूप प्रथम अहिंसा अणुव्रत है ।

प्र. ४. त्रस किसे कहते है ?

उ. त्रस नाम कर्म के उदय से जो जीव हलन चलन करे, छाया से धूप में आवे और धूप से छाया में जावे, उसे ''त्रस'' कहते हैं । इसके चार भेद हैं - १ बेइन्द्रिय, २. तेइन्द्रिय, ३. चउरिन्द्रिय और ४. पंचेन्द्रिय।

प्र. ५. बेइन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ. एक काया और दूसरा जीभ, ये दो इन्द्रियां जिसके हों, उसे बेइन्द्रिय कहते हैं । जैसे-शंख, कोड़ी, सीप, लट, अलसिया, कृमि आदि ।

प्र. ६. तेइन्द्रिय किसे कहते है ?

उ. १. काया, २. जीभ और ३ नाक, ये तीन इन्द्रियां जिसके हो, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं जैसे जूं, लीख, चांचड, खटमल आदि।

प्र. ७. चउरिन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उ. १. काया, २. जीभ, ३. नाक, ४. आंख, ये चार इन्द्रियाँ जिसके हों, उसे चउरिन्द्रिय कहते हैं । जैसे - मक्खी, डांस, मच्छर आदि ।

प्र. ८. पंचेन्द्रिय किसे कहते है ।

उ. काया, जीभ, नाक, आँख और कान, ये पांच इन्द्रियां जिसके हों, उसे पंचेन्द्रिय कहते है । जैसे - मनुष्य, देव, नारक और गाय, भैस आदि ।

प्र. ९. जान के पहचान के हिंसा करना किसे कहते है ?

उ. "जहां पर या जिस पर मैं प्रहार कर रहा हूँ वहाँ या व त्रस जीव है ।"- यह जानते हुए हिंसा करना, जान पहचान के हिंसा करना कहलाता है ।

प्र. १०. संकल्प करके हिंसा करना किसे कहते हैं ?

उ. जैसे "मैं इस मनुष्य को मारूँ, इन सिंह, हिरण आदि शिकार करूँ, सर्प, चूहे, मच्छर आदि का नाश क अंडे, मछली आदि खाऊँ" ऐसा विचार कर उनकी हिंसा करना संकल्पी हिंसा है ।

प्र. ११. श्रावक संकल्पी हिंसा का ही त्याग क्यों करता है ?

उ. क्योंकि अन्य आरम्भ करते हुए श्रावक की मारने बुद्धि न रहते हुए भी उससे त्रस जीवों की हिंसा जाती है । जैसे - पृथ्वीकाय खोदते हुए भूमिगत त्र जीवों की हिंसा हो जाती है । वाहन पर चलते हुए वाह से कीड़ी आदि जीव मर जाते हैं । ऐसी आरम्भी त्र हिंसा का श्रावक त्याग करने में समर्थ नहीं होता पर संकल्पी हिंसा का तो त्याग कर सकता है।

प्र. १२. शरीर के लिए पीड़ाकारी का उदाहरण दीजिये ?

उ. कृमि, नारू (बाला) आदि ।

प्र. १३. सापराधी किसे कहते है ?

उ. आक्रमणकारी शत्रु, सिंह, सर्प आदि को धनापहारी चं डाकू आदि को, शील लूटने वाले जार आदि को उचित और आवश्यक राष्ट्रनीति, राजनीति, समाजनी आदि का भंग करने वाले को सापराधी कहते हैं ।

प्र. १४. श्रावक, सापराधी की हिंसा क्यों नहीं छोड़ देता ?
उ. संसार में रहने के कारण उस पर आश्रितों की रक्षा आदि का भार रहता है अतः वह सापराधी हिंसा नही छोड़ पाता है ।
प्र. १५. निरपराध किसे कहते हैं ?
उ. जिसने किसी का अपराध नहीं किया हो उसे निरपराध कहते हैं जैसे आक्रमण नहीं करने वाले शान्ति प्रेमी मनुष्य, धनशील आदि को नहीं लूटने वाले साहूकार सुशील आदि, अपने मार्ग से जाते हुए सिंह सर्प आदि और किसी को कष्ट न पहुँचाने वाले गाय, हरिण, तीतर, मछली, अण्डे आदि निरपराध हैं।
प्र. १६. आकुट्टि से मारना किसे कहते हैं ?
उ. कषायवश निर्दयतापूर्वक प्राण से रहित करने, मारने की बुद्धि से मारना, आकुट्टि की बुद्धि से मारना कहलाता है।
प्र. १७. जीव अपने कर्मानुसार मरते है और दुःख पाते है फिर मारने वाले को पाप क्यों लगता है ?
उ. मारने की दुष्ट भावना और मारने की दुष्ट प्रवृत्ति से ही मारने वाले को पाप लगता है ।
प्र. १८ "बन्धे" अतिचार का स्वरूप क्या है ?
उ. ऐसे मजबूत बंधन से बांधना कि जिससे गति संचार, शरीर संचार और रक्त संचार में बाधा पड़े, गाढ़ा बंधन कहलाता है ।
प्र १९. "वहे" के अन्य प्रकार बताइये ?
उ. घूंसा, लात, चाबुक, आर आदि से मर्म स्थान आदि पर ऐसा



प्रहार करना–ताडन करना–मारना कि चमड़ी उधड़ जा
रक्त बहने लगे या निशान पड़ जाय, वहे अतिचार है।

प्र. २०. ''छविच्छेद'' अतिचार कब लगता है ?

उ. रोगादि कारणों के न होते हुए अंग भंग करने चम का छेदन करने, डाम आदि देने, अवयव आदि का पर ''छविच्छेद'' अतिचार लगता है ।

प्र. २१. अतिभार किसे कहते हैं ?

उ. जो पशु जितने समय तक जितना भार ढो सकता है उससे भी अधिक समय तक उस पर भार (बोझ लादना या जो मनुष्य जितने समय तक जितना क कर सकता हो, उससे भी अधिक समय तक उस कार्य कराना, अतिभार अतिचार है ।

प्र. २२. ''भत्तपाण वोच्छेए'' अतिचार कब लगता है ?

उ. भोजन पानी के समय भोजन-पानी नहीं करने देने अन्तराय देने से ''भत्तपाण वोच्छेए'' अतिचार लगता है

२ सत्य अणुव्रत

दूसरा अणुव्रत – थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं कण्णालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहार (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (झूठी साक्षी) इत्यादि बड़ा (मोटा) झूठ बोलने का पच्चक्खाण जावज्जीवा दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयस कायसा एवं दूसरा व्रत स्थूल मृषावाद विरमण के पंच

अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-
सहसब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंतभेए✡,
मोसोवएसे, कूडलेहकरणे जो मे देवसिओ अइयारो
कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
थूलाओ	स्थूल
मुसावायाओ	मृषावाद (झूठ बोलने) से
वेरमणं	विरमण (हटना)
कण्णालीए	कन्या (वर आदि मनुष्य) सम्बन्धी
गोवालीए	गाय (भैंस, आदि पशु) सम्बन्धी
भोमालीए	भूमि (धन आदि शेष द्रव्य) सम्बन्धी
णासावहारो- (थापणमोसो)	धरोहर दबाने के लिए
कूड-सक्खिजे	कूड़ी साख (झूठी साक्षी)
सहसब्भक्खाणे	सहसाकार से किसी के प्रति झूठा दोष (कूडा आल) दिया हो
रहस्सब्भक्खाणे	एकान्त में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो
सदार-मंत-भेए	अपनी स्त्री का मर्म प्रकाशित किया हो (गुप्त बात प्रकाशित की हो)
मोसोवएसे	मृषा (झूठा) उपदेश दिया हो
कूड-लेह-करणे	झूठा (कूड़ा) लेख लिखा हो

✡ स्त्रियों को 'सभत्तारमंतभेए'' बोलना चाहिये।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. इत्यादि शब्द से कौन सा झूठ समझना चाहिए ?

उ. झूठा आरोप लगाना, विश्वासघात करना, भगवान् ल झूठी शपथ खाना, मृषा उपदेश देना, राजकीय साहित्यि बड़ा झूठ बोलना आदि ।

प्र. २. यदि किसी से राजकीय झूठ नहीं छूटे तो क्या वह ग्रहण नहीं कर सकता ?

उ. यथासंभव आत्मबल बढ़ा कर सभी बड़े झूठ का त्या करना चाहिये, यदि आत्मबल के अभाव में ऐसा नह हो सके तो जितना झूठ त्याग सके, उतना व्रत अवश्य ही ले।

प्र. ३. रक्षा के लिए झूठी साक्षी देना या नहीं ?

उ. रक्षा की भावना उत्तम है, पर रक्षा के लिए झूठी साक्ष नहीं देनी चाहिए । अगर किसी को बचाने के लि झूठी साक्षी दी हो तो उसका प्रायश्चित्त लेना चाहिए ।

प्र. ४. "**सहसब्भक्खाणे**" से आप क्या समझते हैं ?

उ. क्रोधादि कषायों के आवेश में आकर बिना विचारे किसी पर हिंसा, झूठ, चोरी आदि का आरोप लगाना । सन्देह होने पर प्रमाण मिले बिना अपने पर आये आरोप को टालने के लिए आरोप लगाना ।

प्र. ५. "**सदारमन्तभेए**" से क्या अभिप्राय है ?

उ. स्वस्त्री, मित्र, जाति, राष्ट्र किसी की भी कोई गोपनीय बात अन्य के सामने प्रगट करना ।

प्र. ६. सच्ची बात प्रगट करना अतिचार कैसे है ?

ऐसा करने से स्त्री आदि का विश्वासघात होता है । वह लज्जित होकर मर सकती है । राष्ट्र पर अन्य राष्ट्र आक्रमण कर सकता है अतः विश्वासघात और हिंसा की अपेक्षा से सत्य बात प्रकट करना अतिचार है ।

. ७. झूठा उपदेश किसे कहते हैं ?

बिना पूछे या पूछने पर ऐसा असत्य परामर्श देना, जिससे उसका अहित हो और उसके धन तथा धर्म की हानि हो।

प्र. ८. झूठा (कूडा) लेख से क्या समझना चाहिए ?

उ. दूसरो के साथ विश्वासघात हो ऐसा खोटा लेख लिखना, बनावटी हस्ताक्षर, सिक्के या विधान बनाना आदि कूट लेख लिखना कहलाता है ।

३ अचौर्य अणुव्रत

तीसरा अणुव्रत - थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं - खात खन कर, गांठ खोलकर, ताले पर कूंची लगा कर, मार्ग में चलते हुए को लूट कर, पड़ी हुई किसी के अधिकार की बड़ी वस्तु चोरी की भावना से लेना इत्यादि बड़ा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा एवं तीसरा व्रत स्थूल अदत्तादान विरमण के पंच अइयारा जाणियव्वा

न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊँ-तेनाह तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल कूडमाणे,तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसि अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
अदिण्णादाणाओ	अदत्तादान (चोरी) से
निर्भ्रमी	शंका रहित
तेनाहडे	चोर की चुराई वस्तु ली हो
तक्करप्पओगे	चोर को सहायता दी हो
विरुद्धरज्जाइक्कमे	राज्य विरुद्ध काम किया हो
कूडतुल्लकूडमाणे	झूठा (कूड़ा) तोल झूठा (कूड़ा) किया हो
तप्पडिरूवगववहारे	वस्तु मे भेल संभेल की हो ।

प्रश्नोत्तर .

प्र. १. अदत्तादान किसे कहते है ?

उ. किसी भी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बि लेना अदत्तादान-चोरी है ।

प्र. २. तीसरे व्रत में कितनी प्रकार की चोरी का त्याग होता है

उ. इस व्रत में मुख्य पांच प्रकार की बड़ी चोरी का त्य होता है । पांच प्रकार की चोरी इस प्रकार हैं- १. स लगाना २. गांठ खोलना अर्थात् जेब काटना, पॉकि उड़ा लेना आदि ३. ताले तोड़ना-खोलना अर्थात् सुरक्षि धन को हर लेना ४. राहगीरों को लूटना या शस्त्रादि

बल प्रयोग से धन छीन लेना और ५. किसी की गिरी हुई, भूल से छूटी हुई वस्तु को उठा लेना–रख लेना ।

३ लोक निन्द्य चोरी क्या है ? इसके त्याग मे कितने आगार कहे है ?

जिस अदत्त वस्तु को लेने से समाज में निन्दा हो, लोक मे चोरी का भ्रम पैदा हो, वह लोक निन्द्य चोरी है । लोक निन्द्य अदत्त के त्याग मे दो आगार हैं –

१. सगे संबन्धी – कुटुम्बियो की वस्तुएं वस्त्र आभूषण आदि उन्हें पूछने का अवकाश न होने पर सुरक्षित रूप मे रख लेना या काम मे लेने योग्य वस्तु को काम मे ले लेना ।

२. व्यापार संबन्धी– व्यापार से संबधित पदार्थ कलम, पेन्सिल, कागज आदि तुच्छ वस्तुएँ बिना पूछे ले लेना ।

४ इस व्रत मे सगे–सम्बन्धी का आगार क्यो रखा गया है ?

सगे–सम्बन्धी की घनिष्ठता के कारण मजाक में या जरूरत होने पर वस्तुओ को छिपाना, ताला खोलना आदि करते हैं, ऐसी स्थिति श्रावक से हो जाती हे । इसलिए इसका आगार रखा जाता है ।

५ बड़ी चोरी किसे कहते हैं ?

बिना पूछे किसी की ऐसी चीज लेने को जिससे उसको दु:ख होता हो, लोक निन्दा हो, राजदण्ड मिले ।

६ छोटी चोरी का क्या अभिप्राय है ?

चोरी की भावना नही रखते हुए उपयोग के लिए बिना आज्ञा कागज पेन्सिल आदि लेना ।

प्र. ७. तेनाहडे (स्तेनाहृत) की व्याख्या कीजिये ?

उ. चोर के द्वारा लायी गयी वस्तुओं को रख लेना, उसके द्वारा चुराये गये पदार्थों को खरीद लेना, उनका संरक्षण करना आदि तेनाहडे (स्तेनाहृत) है ।

प्र. ८. तक्करप्पओगे (तस्कर प्रयोग) अतिचार क्या है ?

उ. चोर को सहायता (रसद) देना, किसी के धन आदि का भेद बताना, चोरी का संकेत करना, उसकी चुराई हुई वस्तुओं को लेने का आश्वासन देना आदि तस्कर प्रयोग है ।

प्र. ९. राज्य विरुद्ध काम किसे कहते हैं ।

उ. प्रजा की सुव्यवस्था को राज्य (शासन) कहते हैं उसके विरुद्ध कार्य करना जैसे- निषिद्ध वस्तुएँ बेचना-खरीदना निषिद्ध राज्यों में बेचना, खरीदना, कर (टैक्स) नहीं देना, विरोधी राज्य की सीमा का अतिक्रमण करना आदि।

प्र. १०. कूट तोल-कूट माप किसे कहते हैं ?

उ. देने और लेने के अलग-अलग तोल माप रखना या देते समय कम तोल कर देना, कम माप कर देना, कम गिन कर देना और लेते समय अधिक तोल कर, अधिक माप कर, अधिक गिन कर लेने से कूट-तोल कूट-माप अतिचार लगता है ।

प्र. ११. "तप्पडिरूवगववहारे" की व्याख्या कीजिये ?

उ. अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, उत्तम वस्तु दिखाकर निकृष्ट वस्तु देना, अल्प

मूल्य वाली या बनावटी वस्तु को बहुमूल्य जैसी और वास्तविक जैसी बना कर बेचना, या ऊपर लेबल अच्छा लगा कर भीतर खराब-खोटी वस्तु रख कर बेचना "तप्पडिरूवगववहारे" अतिचार है ।

४ ब्रह्मचर्य व्रत

चौथा अणुव्रत - थूलाओ मेहुणाओ-वेरमणं ‍ारसंतोसिए (स्त्रियों के लिए "सभत्तार सन्तोसिए") अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, देव- ‍ी सम्बन्धी दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि, ‍गसा वयसा कायसा तथा मनुष्य तिर्यच सम्बन्धी ‍विहं एगविहेणं न करेमि कायसा एवं चौथा व्रत स्थूल ‍थुन विरमण के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा जहा ते आलोऊं- इत्तरियपरिग्गहियागमणे ✡ ‍परिग्गहियागमणे, ✡ अनंगकीडा, परविवाहकरणे, ‍ामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ ‍स्स मिच्छामि दुक्कडं ।

❀ जिसके कुशील का यावज्जीवन का त्याग है उन्हें "सदारसतोसिए ‍वसेस" के स्थान पर "सव्वं" शब्द बोलना चाहिए ।

✡ स्त्रियों को "इत्तरियपरिग्गहियागमणे" "अपरिग्गहियागमणे" के ‍थान पर "इत्तरियपरिग्गहियगमणे" "अपरिग्गहिय गमणे" शब्द बोलने ‍ाहिए।

मूल शब्द	अर्थ
मेहुणाओ वेरमणं	मैथुन (अब्रह्मचर्य) का त्याग
सदार	अपनी विवाहिता स्त्री मे
(स्त्री के लिए सभत्तार)	(अपने विवाहित पति में)
सन्तोसिए	सन्तोप करता (करती) हूँ
अवसेसं	अन्य स्त्रियो (पुरुषों) से
मेहुणविहिं	मैथुन-सेवन का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता (करती) हूं
एगविहं एगविहेणं	एक करण एक योग से (मैथुन-सेव
न करेमि	नहीं करूंगा
कायसा	काया से
इत्तरियपरिग्गहियागमणे	इत्वर परिगृहीता (अल्प वय वा स्वस्त्री) से गमन किया हो ।
अपरिग्गहिया गमणे	अपरिगृहीता (सगाई की हुई स्वस्त्री) गमन किया हो
अनंगकीडा	अनंग क्रीड़ा की हो,
पर-विवाह-करणे	पराये का विवाह नाता कराया हो
कामभोगतिव्वाभिलासे	काम भोग की तीव्र अभिलाषा की

प्रश्नोत्तर

प्र. १ स्वस्त्री सन्तोप कितने प्रकार का होता है ?

उ. नाना प्रकार से हो सकता है । जैसे -एक विवाह उप अन्य से विवाह नहीं करूँगा । वर्तमान स्त्री के स्वर्ग हो जाने पर इतने वर्ष बीत जाने पर अन्य विवाह

करूँगा । इतने वर्ष हो जाने पर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा । अमुक तिथियों, पर्वों पर या श्रावण भाद्रपद मास मे ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा ।

२. "इत्वरपरिगृहीतागमन" का क्या अर्थ है ?
अपनी विवाहिता अल्प वय वाली–छोटी उम्र की स्त्री से गमन करना इत्वरपरिगृहीतागमन कहलाता है ।

३. 'अपरिगृहीतागमन' अतिचार क्या है ?
स्वयं के साथ सगाई की हुई है परन्तु पंचों की तथा माता पिता की एवं संरक्षको की साक्षी से विवाह नही हुआ हो उसके साथ मैथुन सेवन करने से अपरिगृहीतागमन अतिचार लगता है ।

४. "अनंगक्रीड़ा" क्या है ?
काम सेवन के जो प्राकृतिक अंग हैं उनके सिवाय अन्य अंगों से जो कि काम सेवन के लिए अंग नही हैं, क्रीड़ा करना अनंगक्रीडा है । हस्त मैथुन का समावेश भी इसी अतिचार मे होता है । स्व स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियो के साथ मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से उनका आलिंगन आदि करने वाले के भी व्रत मलिन होता है । इसलिए वह भी अतिचार माना गया है ।

५ "परविवाहकरणे" की व्याख्या कीजिये ?
अपना और अपनी संतान के सिवाय अन्य का विवाह कराना परविवाहकरण अतिचार है । स्वदारा संतोषी श्रावक को दूसरो का विवाह आदि कर उन्हे मैथुन मे

चौदह प्रकार की वस्तुएँ निष्काम बुद्धि पूर्वक आत्म कल्याण की भावना से देना तथा दान का संयोग न मिलने पर सदा ऐसी भावना रखना अतिथिसंविभाग व्रत है ।

प्र. २. पडिहारी (प्रातिहार्य) अपडिहारी (अप्रातिहार्य) किसे कहते हैं और वे वस्तुएँ कौन-कौनसी हैं ?

उ. जिन वस्तुओं को साधु-साध्वी लेने के बाद वापस नहीं करते है उन्हें "अपडिहारी" (अप्रातिहार्य) वस्तुएँ कहते हैं। इसके आठ भेद हैं - १. अशन २. पान. ३. खाद्य ४. स्वाद्य ५. वस्त्र ६ पात्र ७. कम्बल और ८. पाद-पोंछन ।

जिस वस्तु को साधु-साध्वी अपने उपयोग में लेकर कुछ काल तक रखकर बाद मे वापस कर देते हैं उन्हें "पडिहारी" (प्रातिहार्य) कहते हैं । इसके छह भेद हैं - १. पीठ (चौकी) २. फलक (पाट) ३. शय्या (पौषधशाला, घर) ४. संस्तारक (तृण आदि का आसन) ५. औषध और ६. भेषज ।

उपरोक्त चौदह प्रकार की अचित्त और दोष रहित वस्तुएँ साधु-साध्वियों को उनकी आवश्यकतानुसार देना, चौदह प्रकार का दान कहलाता है ।

प्र. ३. औषध और भेषज मे क्या अन्तर है ?

उ. सूंठ, हल्दी, आंवला, हरड़, लवंग आदि असंयोगी द्रव्य "औषध" कहे जाते हैं । हिंगाष्टक चूर्ण, त्रिफला आदि संयोगी वस्तुएँ "भेषज" कहलाती हैं ।

प्र. ४. क्या देय वस्तुएं चौदह ही है ?

उ ये चौदह वस्तुएँ प्राय: काम मे आती हैं अत: इनका

उल्लेख किया गया है । इसके अलावा धर्मोपयोगी पुस्तकें, सूई, कैंची आदि भी समझ लेना चाहिये ।

क्या साधु–साध्वियां ही दान के पात्र हैं ?

साधु–साध्यिां दान के उत्कृष्ट (उत्तम) पात्र हैं अतः उनका इस बारहवे व्रत में उल्लेख किया गया है । प्रतिमाधारी श्रावक, व्रतधारी श्रावक और सामान्य स्वधर्मी सम्यक्त्वी भी दान के पात्र हैं

सचित्त निक्खेवणया (सचित्त निक्षेप) किसे कहते हैं ?

साधु को नही देने की बुद्धि से कपट पूर्वक अचित्त वस्तुओं को सचित्त पर रखना "सचित्त निक्षेप" कहलाता है । जैसे–रोटी के बर्तन को नमक आदि के बर्तन पर रखना, धोवन पानी के पात्र को सचित्त जल के घड़े पर रखना, खिचड़ी आदि को चूल्हे पर रखना, मिठाई आदि को हरी पत्तल पर रखना आदि ।

सचित्त पिहणया (सचित्त पिधान) अतिचार क्या है ?

साधु को नहीं देने की बुद्धि से कपट पूर्वक अचित्त अन्न आदि को सचित फलादि से ढंकना सचित्त पिधान अतिचार है ।

कालाइक्कमे (कालातिक्रम) किसे कहते हैं ?

उचित भिक्षा काल का अतिक्रमण करना कालातिक्रम अतिचार है । भोजन के समय द्वार बन्द रखना, स्वयं घर के बाहर रहना, रात्रि के समय दान की भावना भाना आदि कालातिक्रम अतिचार है ।

परववएसे (परव्यपदेश) किसे कहते हैं ?

आहारादि अपना होने पर भी न देने की बुद्धि से उसे

दूसरे का बताना परव्यपदेश अतिचार है । तथा आप सूझता होते हुए भी दास नौकर आदि से दान दिलवाना, यह भी इसी अतिचार मे आता है ।

प्र. १०. मच्छरियाए (मत्सरिता) का क्या अर्थ है ?

उ. अमुक पुरुष ने दान दिया है क्या मैं उससे कृपण या हीन हूँ ? इस प्रकार ईर्षा भाव से दान देने में प्रवृत्ति करना, विशिष्ट दानी कहलाने के लिए दान देना आदि मत्सरिता अतिचार है ।

प्र. ११. यह व्रत किस प्रकार ग्रहण किया जाता है ?

उ. दिन में एक बार, दो बार भोजन करते समय निर्दोष दान देने की दृष्टि से "मैं पाँच नमस्कार-सूत्र गिन कर कुछ समय साधु मुनिराज के पधारने की भावना भाऊंगा" आदि ।

प्र. १२. इस व्रत को धारण करने वाले को मुख्य रूप से किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

उ. १. भोजन बनाने वाले और करने वाले को सचित्त वस्तुओं के संघट्टे के बिना बैठना चाहिये । २. घर मे सचित्त-अचित्त वस्तुओं को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिये । ३. सचित्त वस्तुओं का काम पूर्ण होने पर उनको यथा स्थान रखने की आदत होनी चाहिये। ४. कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति का कचरा व गुठलियां आदि को घर में नहीं बिखेरने की प्रवृत्ति रखनी चाहिये ।५ धोवन पानी के बारे में अच्छी जानकारी करके अपने घर में सहज बने अचित्त कल्पनीय

पानी को तत्काल नहीं फैंकने की आदत रखनी चाहिये, उसे योग्य स्थान में रखना चाहिये । ६. दिन में घर का दरवाजा खुला रखने की प्रवृत्ति रखनी चाहिये । ७ साधु मुनिराज घर मे पधारें तो सूझता होने पर तथा मुनिराज के अवसर होने पर स्वयं के हाथ से दान देने की उत्कृष्ट भावना रखनी चाहिये । ८. साधुजी की गोचरी के विधि-विधान की जानकारी, उनकी संगति, चर्चा, शास्त्र स्वाध्याय से निरंतर बढ़ाते रहना चाहिये । ९. साधु मुनिराज गवेषणा करने के लिए कुछ भी पूछताछ करें तो झूठ नही बोलना चाहिये और उनकी गवेषणा से नाराज भी नहीं होना चाहिये ।

प्र १३. क्या सामायिक, पौषध वाला साधु साध्वी को आहार पानी आदि बहरा सकता है ?

उ. सामायिक पौषध वाला खुले श्रावक से आहारादि वस्तु की याचना करके स्वयं के घर से या दूसरों के घर से साधुओ को बहरा सकता है । स्वयं के पास रहा हुआ उपकरण प्रमार्जनी, वस्त्र, पुस्तक आदि बिना किसी की आज्ञा से भी प्रतिलाभित कर सकता है ।

बड़ी संलेखना का पाठ

अह भंते अपच्छिम-मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा पौषध शाला पूंज कर उच्चारपासवण भूमिका पडिलेह कर गमणागमणे पडिक्कम कर, दर्भादिक संथारा

संथार कर, दर्भादिक संथारा दुरूह कर, पूर्व या उत्त
दिशा सम्मुख पल्यंकादि आसन से बैठ कर करयल-
संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी
''णमोत्थुणं अरहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं'' ऐसे
अनंत सिद्ध भगवान् को नमस्कार कर के ''णमोत्थुणं
अरहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं'' जयवंते
वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थक
भगवान् को नमस्कार कर के अपने धर्माचार्यजी को
नमस्कार करता हूँ। साधु प्रमुख चारों तीर्थ को खमा के
सर्व जीव-राशि को खमा के, पहले जो व्रत आदरे हैं,
उनमें जो अतिचार दोष लगे हों, वे सर्व आलोच के
पडिक्कम कर के, निन्द के निःशल्य हो कर के, सव्वं
पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि,
सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं
पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं
माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं, सव्वं अकरणिज्जं जोगं
पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न
कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा वयसा
कायसा ऐसे अठारह पापस्थान पच्चक्ख के सव्वं असणं
पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि
जावज्जीवाए ऐसे चारों आहार पच्चक्ख के, जं पि य इमं

ारीरं इट्ठं कंतं, पियं मणुण्णं, मणामं, धिज्जं विसासियं, ंमयं, अणुमयं बहुमयं भण्डकरण्डगसमाणं रयण-रंडगभूयं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं वासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसमसगा, मा ां वाइय-पित्तिय-कप्फिय (सिंभिय) सण्णिवाइय, विविहा रोगायंका परिसहा उवसग्गा फासा फुसंतु-वं पि य णं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं वोसिरामि-त्ति कट्टु, ऐसे शरीर को वोसिरा के, कालं अणवकंखमाणे विहरामि ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, फरसना करूं तब शुद्ध होऊँ ऐसे अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगा-संसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगा संसप्पओगे, मा मज्झ हुज्ज मरणंते वि सड्ढा परूवणम्मि अण्णहा भावो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
अह (अथ)	किसी अध्ययन आदि को प्रारम्भ करने से पहले 'अथ' शब्द का प्रयोग किया जाता है
अपच्छिम मारणंतिय-संलेहणा	सब के पश्चात् मृत्यु के समीप होने वाली संलेखना अर्थात् जिसमें शरीर कषाय,



	ममत्व आदि कृश (दुर्बल) किये जाते ऐसा तप विशेष
झूसणा	सेवन करना
आराहणा	आराधना करना
उच्चारपासवण भूमिका	मल-मूत्र त्यागने की भूमि की
पडिलेह के	प्रतिलेखना (देख) करके
गमणागमणे	जाने आने की क्रिया का
पडिक्कम कर	प्रतिक्रमण करके
दर्भादिक संथारा	दर्भ (घास) आदि का आसन
संथार कर	बिछा कर
दुरूह कर	संथारे पर आरूढ़ होकर
पल्यंकादि	पालथी लगाकर
करयलसंपरिग्गहियं	दोनों हाथ जोड़ कर
सिरसावत्तं	मस्तक से आवर्तन ❖ करके
मत्थए अंजलिं कट्टु	मस्तक पर हाथ जोड़ कर
एवं वयासी	इस प्रकार कहे
णमोत्थुणं	नमस्कार हो
अरहंताणं भगवंताणं	अर्हंत भगवान् को
जाव संपत्ताणं	यावत् मोक्ष को प्राप्त हुओ को
संपाविउकामाणं	मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वालों को
निःशल्य	माया शल्य, मिथ्यादर्शन शल्य औ

❖ आवर्तन - मस्तक पर जोडे हुए हाथों को तीन बार दाहिनी ओ से बांयी तरफ घुमाना ।



	निदान (नियाणा) शल्य इन तीनो शल्यो से रहित
सव्वं	सभी प्रकार का
पाणाइवायं	प्राणातिपात (जीव हिंसा) का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता हूं
मुसावायं	मृषावाद (झूठ) का
अदिण्णादाणं	अदत्तादान (चोरी) का
मेहुणं	मैथुन सेवन का
परिग्गहं	परिग्रह रखने का
कोह माणं	क्रोध, मान
जाव मिच्छादंसणसल्लं	यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का (अर्थात् अठारह पापो का)
अकरणिज्जं जोगं	अकरणीय-नहीं करने योग्य कार्य
तिविहं तिविहेणं	तीन करण तीन योग से
करंतं पि अन्नं न	दूसरों को करते हुए
समणुजाणामि	भला भी नहीं समझूंगा
जं पि य	और जो
इमं सरीरं	यह शरीर
इट्ठं	इष्ट
कंतं	कान्तियुक्त
पियं	प्रिय - प्यारा
मणुण्णं	मनोज्ञ-मनोहर
मणामं	अत्यन्त मनोहर
धिज्जं	धीरज रखने वाला-धैर्यशाली

विसासियं	विश्वास करने योग्य
संमयं	मानने योग्य
अणुमयं	विशेष सम्मान को प्राप्त
बहुमयं	बहुत माननीय
भण्डकरण्डगसमाणं	आभूषणों के करण्ड (करण्डिया) के समान
रयणकरण्डगभूयं	रत्नों के करण्ड के समान
मा णं सीयं	शीत (सर्दी) न हो
मा णं उण्हं	उष्ण (गर्मी) न हो
मा णं खुहा	भूख न लगे
मा णं पिवासा	प्यास न लगे
मा णं वाला	सर्प न काटे
मा णं चोरा	चोरों का भय न हो
मा णं दंसमसगा	डांस-मच्छर न सतावें
मा णं वाइय-	वात पित्त कफ
पित्तिय कफ्फिय	संबन्धी रोग न हों
सण्णिवाइयं	सन्निपात
विविहा	अनेक प्रकार के
रोगायंका	रोग और आतंक
परिसहा	क्षुधा आदि परीषह
उवसग्गा	उपसर्ग (देव, तिर्यंच आदि द्वारा दि[ए] गया कष्ट)
फासा फुसंतु	स्पर्श करे, संबन्ध करे, (ऐसे शरीर को
चरमेहिं	अन्तिम

उस्सासणिस्सासेहिं	उच्छ्वास निःश्वासों (श्वासोच्छ्वासो) के साथ
वोसिरामि	त्याग करता हूँ
त्ति कट्टु	ऐसा करके
कालं अणवकंखमाणे-विहरामि	काल की आकांक्षा (वांछा)नही करता हुआ विचरता हूँ
इहलोगासंसप्पओगे	इस लोक मे राजा चक्रवर्ती आदि के सुख की कामना करना
परलोगासंसप्पओगे	परलोक में देवता इन्द्र आदि के सुख की कामना करना
जीवियासंसप्पओगे	महिमा प्रशंसा पैलने पर बहुत काल तक जीवित रहने की आकांक्षा करना
मरणासंसप्पओगे	कष्ट होने पर शीघ्र मरने की इच्छा करना
कामभोगासंसप्पओगे	कामभोग की अभिलाषा करना
मा	नही
हुज्ज	होवे
मज्झ	मेरी
सद्धा	श्रद्धा
परूवणम्मि	प्ररूपणा में
अण्णहा	अन्यथा
भावो	भाव

प्रश्नोत्तर

प्र १ मरण किसे कहते हैं ? इसके कितने मुख्य भेद हैं ?

उ आयुष्य पूरा होने पर आत्मा का शरीर से अलग होना

अथवा शरीर से प्राणों का निकलना "मरण" कहलाता है । मरण दो प्रकार का बतलाया है – सकाम (पंडित) मरण और २. अकाम (बाल) मरण । ज्ञानी जीवो का मरण सकाम मरण होता है और अज्ञानी जीवों का मरण अकाम मरण होता है ।

प्र. २. संलेखना क्या है ?

उ. संलेखना एक प्रकार का तप है ।

प्र ३. संलेखना कैसा तप है ?

उ. संलेखना शरीर और कषाय को कृश करने वाला तप है ।

प्र ४. तप से क्या लाभ है ?

उ. इहलोक दृष्टि से रोग मुक्ति होती है । शारीरिक मानसिक विकार नष्ट होता है । शरीर स्वस्थ बनता है । आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मदृढ़ता का विकास होता है । कर्म मल का विनाश होने से आत्मा निर्मल सशक्त बनती है । लब्धियां प्राप्त होती हैं । कर्म रूपी कचरे को जलाने के लिए तप अग्नि का काम करता है ।

प्र. ५. नित्य रात्रि को संलेखना कैसे करनी चाहिये ?

उ. इसकी विधि भी मारणांतिक संलेखना के समान ही है । जहाँ "विहरामि" शब्द आया है उसके बाद "यदि पारूँ तो अनशन पालना कल्पता है, मर जाऊं तो जीवन पर्यन्त अनशन है" इतना कह देना चाहिये ।

निम्न दोहे से भी इसे ग्रहण किया जा सकता है :-

आहार शरीर उपधि, पच्चक्खूं पाप अट्ठार ।
जब तक मैं बोलूं नहीं, एक बार नवकार ॥

प्र. ६. मारणांतिक संलेखना की विधि क्या है ?

उ. संलेखना का योग्य अवसर देखकर साधु–साध्वीजी की सेवा में या उनके अभाव में अनुभवी श्रावक–श्राविका के सम्मुख अपने व्रतो में लगे अतिचारों की निष्कपट आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिये । पश्चात् कुछ समय के लिए या यावज्जीवन के लिए आगार सहित अनशन लेना चाहिये। इसमें आहार और अट्ठारह पाप का तीन करण तीन योग से त्याग किया जाता है । यदि किसी का संयोग नहीं मिले तो स्वयं आलोचना कर संलेखना तप ग्रहण किया जा सकता है । यदि तिविहार अनशन ग्रहण करना हो तो "पाण" शब्द नही बोलना चाहिये । गादी, पलंग का सेवन, गृहस्थों द्वारा सेवा आदि कोई छूट रखनी हो तो उसके लिए आगार रख लेना चाहिये ।

प्र. ७. उपसर्ग के समय संलेखना कैसे करनी चाहिये ?

उ. जहां उपसर्ग उपस्थित हो, वहां की भूमि पूंज कर "**णमोत्थुणं से विहरामि**" तक पाठ बोलना चाहिये और आगे इस प्रकार बोलना चाहिये "यदि इस उपसर्ग से बचूं तो अनशन पालना कल्पता है, अन्यथा जीवन पर्यन्त अनशन है ।"

प्र. ८. क्या संलेखना, आत्महत्या है ?

उ. संलेखना, आत्महत्या नहीं है । संलेखना का उद्देश्य आत्मघात करने का नही बल्कि आत्मगुण घातक अवगुणो के घात करने का है । संलेखना आत्मोत्थान की दृष्टि से की जाती है । यह आत्मशुद्धि और प्रायश्चित्त का महानतम व्रत है । यह घोर तप है और अंतिम घड़ियो मे

साधनाशील को चिरशांति प्रदान करने का प्रबल साधन है । आत्म-हत्या राग द्वेष एवं मोहवृत्ति से ही होती है। आत्मघात प्रायः लज्जा से, निराशा से, आवेश से किया जाता है । संथारे में प्राणनाश अवश्य हो जाता है परन्तु वह राग-द्वेष और मोह का कारण नहीं है । इसी कारण मारणांतिक संलेखना को हिंसा की कोटि में समाविष्ट नही किया जा सकता । संलेखना में प्रमाद का अभाव है क्योंकि इसमें रागादिक नही पाये जाते । रागादिक के अभाव के कारण ही संलेखना करने वाले को आत्मघात का दोष नहीं लगता ।

जैसे कोई व्यक्ति समाज सेवा और राष्ट्रसेवा के लिए बलिदान हो जाता है तो हम उसके बलिदान को आत्महत्या नहीं मानते । इसी प्रकार जो व्यक्ति आत्मशुद्धि और आत्मोत्थान के लिए अपना तन और मन धर्म साधना हेतु न्यौछावर कर देता है उसके इस महान् त्याग को आत्म हत्या कैसे माना जा सकता है । आत्म हत्या निंदनीय अपराध है, कायरतापूर्ण अधम कार्य है जबकि संलेखना पवित्र, प्रशंसनीय और आत्मोत्थान का वीरोचित कार्य है । अतः संलेखना-संथारे को आत्महत्या नहीं मानना चाहिये । यदि कोई मानता है तो यह उसकी भूल है ।

[तस्स धम्मस्स का पाठ]

[तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वंदामि जिण-चउव्वीसं ।

मूल शब्द	अर्थ
केवलिपण्णत्तस्स	केवली प्ररूपित
तस्स धम्मस्स	उस धर्म की
आराहणाए	आराधना के लिये
अब्भुट्ठिओमि	उद्यत होता हूं
विराहणाए	विराधना से
विरओमि	निवृत्त होता हूं
तिविहेणं	मन, वचन, और काया द्वारा
पडिक्कंतो	प्रतिक्रमण करता हुआ
जिणचउव्वीसं	चौबीस तीर्थकरों को
वंदामि	वन्दना करता हूं]

पच्चीस मिथ्यात्व का पाठ

१. जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २ अजीव को जीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ३ धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ४ अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ५. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ६. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ७. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ८. संसार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ९. मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, १०. अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व, ११ आभिग्रहिक मिथ्यात्व १२ अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व १३ आभिनिवेशिक

मिथ्यात्व १४. सांशयिक मिथ्यात्व, १५. अनाभोग मिथ्यात्व, १६. लौकिक मिथ्यात्व, १७. लोकोत्तर मिथ्यात्व, १८ कुप्रावचनिक मिथ्यात्व १९ जिन धर्म से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व २०. जिन धर्म से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २१. जिन धर्म से विपरीत श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २२. अक्रिया मिथ्यात्व, २३. अज्ञान मिथ्यात्व, २४ अविनय मिथ्यात्व, २५. आशातना मिथ्यात्व । ऐसे पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व में से किसी मिथ्यात्व का सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ मोहनीय कर्म के उदय से तत्त्वार्थ में श्रद्धा नहीं होना या विपरीत श्रद्धा होना न्यूनाधिक श्रद्धना मिथ्यात्व है ।

प्र. २ "जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व" क्या हैं ?

उ. जीव तत्त्व न मानना या जड़ से उत्पन्न मानना, पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि सम्मूर्च्छिम आदि को जीव नहीं मानना, अंडों एवं जलचर जीवों को खाद्य पदार्थ मानकर उनमें जीव नहीं मानना मिथ्यात्व है ।

प्र. ३. अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व कैसे है ?

उ. जिसमे जीव नहीं है उसमें जीव मानना । ईश्वर ने संसार की रचना की है ऐसा मानना । मूर्ति और चित्रादि को भगवान् मानना, सम्मान देना, हलन चलन करते पुद्गल स्कंधो को जीवाणु मानना । दही थूक आदि अजीव को जीव मानने रूप मिथ्यात्व है ।

प्र. ४. धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्यों है ?

उ. धर्म को अधर्म समझने का अर्थ है - परम मान्य सर्वज्ञ कथित सूत्रो को मिथ्या समझना, उनको कल्याणकारी नही मानना, धर्म के उपकरणों (वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि) को परिग्रह मानकर अधर्म मानना, वायुकाय के जीवो की रक्षा के लिये मुख पर मुखवस्त्रिका बांधने को अधर्म मानना आदि धर्म को अधर्म मानना अभयदान आदि दान देने रूप, धर्म को अधर्म मानना नामक मिथ्यात्व है ।

प्र. ५. अधर्म को धर्म समझने का क्या अर्थ है ?

उ. अधर्म को धर्म समझने का अर्थ है - मिथ्या शास्त्रों को सम्यक्शास्त्र मानना, राग एवं विषय-वासना वर्द्धक ऐसे मिथ्या श्रुतो को भगवान् की वाणी समझना । वीतराग वाणी के विपरीत द्रव्य पूजन की प्रवृत्ति को धर्म प्रवृत्ति समझना आदि अधर्म को धर्म समझने रूप मिथ्यात्व है।

प्र. ६. साधु को असाधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्यो है ?

उ जिनकी श्रद्धा प्ररूपणा शुद्ध है, जो महाव्रत्त आदि श्रमण धर्म के पालक हैं ऐसे सुसाधु को असाधु समझना मिथ्यात्व है ।

प्र. ७. असाधु को साधु श्रद्धे तो मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. जो पांच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति आदि से रहित है जिनकी श्रद्धा प्ररूपणा खोटी है जिनके आचरण सुसाधु जैसे नहीं है उन्हें लौकिक विशेषता के कारण या साधु वेश देख कर सुसाधु समझना मिथ्यात्व है ।

प्र. ८. मोक्ष के मार्ग को संसार का मार्ग श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे है ?

उ. मोक्ष मार्ग–सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप की या संवर निर्जरा की अथवा दान, शील तप, भाव की मखौल (मजाक) उड़ाना, उसे बहुमान्य न समझ कर संसार का हेतु समझना मिथ्यात्व है ।

प्र. ९. संसार के मार्ग को मोक्ष मार्ग समझने का क्या अर्थ है ?

उ. संसार मार्ग को मोक्ष मार्ग समझने का अर्थ है – मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान, आचरण आदि को सम्यक् समझना, संसार बढ़ाने वाले लौकिक अनुष्ठानों को (यज्ञादि को) मोक्ष का हेतु समझना।

प्र. १०. मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व क्यों है ?

उ. मुक्त आत्मा को संसार मे लिप्त समझना, अर्हत-सिद्ध को कर्म मुक्त सुदेव नही मानना मिथ्यात्व है ।

प्र. ११. अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे लगता है ?

उ. रागी–द्वेषी को मुक्त समझना–इतर पंथों के देव जो राग–द्वेष से युक्त है, अज्ञानवश उन्हें मुक्त समझना मिथ्यात्व है ।

प्र. १२. आभिग्रहिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. तत्त्व अतत्त्व की परीक्षा किये बिना ही पक्षपातपूर्वक, किसी तत्त्व को पकड़े रहना और अन्य पक्ष का खंड़न करना आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है ।

प्र. १३. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व क्या है ?

उ. गुण दोष की परीक्षा किये बिना ही सब धर्मो को बराबर समझना अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है ।

प्र १४ आभिनिवेशिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी कदाग्रह वश पकड़े हुए असत् आग्रह को नहीं छोड़े, सत्य स्वीकार नही करे–ऐसे अतत्त्व के आग्रह को आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

प्र. १५. सांशयिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ देव, गुरु, धर्म के विषय में अथवा तत्त्व के विषय में शंकाशील होना, सांशयिक मिथ्यात्व है । जिनागमों मे निरूपित तत्त्व, मुक्तात्मा के स्वरूप अथवा जिनेश्वरों की वीतरागता सर्वज्ञतादि में संदेह करना, आगमो की अमुक बात सत्य है या असत्य - इस प्रकार की शंका करना सांशयिक मिथ्यात्व के उदय का परिणाम है ।

प्र. १६ सांशयिक मिथ्यात्व से बचने का सरल उपाय क्या है ?

उ सांशयिक मिथ्यात्व से बचने का एक मात्र उपाय जिनेश्वर के वचनो मे दृढ़ विश्वास करना है । संशय उत्पन्न होने पर ऐसा विचार करना चाहिये कि –"**तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं**" अर्थात वीतराग भगवन्तो ने जो

फरमाया है वह सर्वथा सत्य है और निःशंक है अतः उसमें शंका नहीं करनी चाहिये ।

प्र. १७. अनाभोगिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. अनाभोग का अर्थ है – उपयोग का न होना । अतः बिना उपयोग जो मिथ्यात्व लगता है, उसे अनाभोग मिथ्यात्व कहते हैं ।

प्र. १८. अनाभोगिक मिथ्यात्व किन जीवों को लगता है ?

उ. अनाभोगिक मिथ्यात्व एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी जीवों को तथा ज्ञान विकल जीवों को होता है । अज्ञान के गाढ़ अंधकार में पड़े हुए जीवों को यह मिथ्यात्व लगता है । जिन जीवों को किसी भी प्रकार के मत का पक्ष नहीं होता है और जो धर्म–अधर्म का विचार ही नहीं कर सकते, वे अनाभोगिक मिथ्यात्वी हैं ।

प्र. १९. लौकिक मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. लोकोत्तर परम–सत्य को और उसके निमित्त सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की उपेक्षा करके–लौकिक मान्य कुदेव, कुगुरु, कुधर्म पर श्रद्धा करना और उनकी उपासना करना, "लौकिक मिथ्यात्व" है । इसके तीन भेद हैं – १ देव विषयक २. गुरु विषयक ३. धर्मगत लौकिक मिथ्यात्व । जैसे – भैरू, भवानी आदि की मनौतियां करना आदि ।

प्र. २०. लोकोत्तर मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. लोकोत्तर तीर्थंकर देव आदि से लौकिक वस्तु की मांग करना तथा उन्हें लौकिक वस्तु देने वाले समझना, कुदेव,

कुगुरु, कुधर्म को सुदेव सुगुरु सुधर्म मानना यह लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

२१. कुप्रावचनिक मिथ्यात्व किसे कहते है ?
निर्ग्रंथ प्रवचन के अतिरिक्त अन्य कुप्रावचनिक-मिथ्या प्रवचन के प्रवर्तक, प्रचारक और मिथ्या प्रवचन को मानना, कुप्रावचनिक मिथ्यात्व है ।

२२. जिन धर्म से न्यून श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे लगता है ?
जिनेश्वर भगवान् द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त से कुछ भी कम मानना, इसी प्रकार प्ररूपणा तथा फरसना में कमी करना, न्यून करण मिथ्यात्व है ।

२३. जिन धर्म से अधिक श्रद्धे तो मिथ्यात्व कैसे ?
जिन प्रवचन से अधिक मानना मिथ्यात्व है । निर्ग्रंथ प्रवचन की मर्यादा से अधिक प्ररूपणा आदि करने, सैद्धांतिक मर्यादा का अतिक्रमण करने, आगम पाठो में वृद्धि करने आदि से यह मिथ्यात्व लगता है ।

२४. विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?
जिन मार्ग से विपरीत श्रद्धा-सुदेव, सुगुरु और सुधर्म से विपरीत श्रद्धा प्ररूपणा करना, निर्ग्रन्थ प्रवचन से विपरीत प्रचार करना, सावद्य एवं संसारलक्षी प्रवृत्ति करना या उसका प्रचार करना, सावद्य प्रवृत्ति में धर्म मानना, विपरीत मिथ्यात्व है ।

२५. अक्रिया मिथ्यात्व किसे कहते है ?
सम्यक् चारित्र की उत्थापना करते हुए एकान्तवादी बन

कर आत्मा को अक्रिय मानना, चारित्रवानों को "क्रि
जड़" कह कर तिरस्कार करना, अक्रिया मिथ्या
कहलाता है ।

प्र. २६. अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. ज्ञान को बन्ध और पाप का कारण मान कर अज्ञान को श्रेष्ठ मानना । "ज्ञान व्यर्थ है, जाने वह ताने, भोले को भगवान् है" - इस प्रकार कहना अज्ञान मिथ्यात्व है।

प्र. २७. अविनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उ. पूजनीय देव, गुरु और धर्म का विनय नहीं करे अविनय करना उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना अविनय मिथ्यात्व है । यह मिथ्यात्व गुण और गुणीजनों के प्रति अश्रद्धा होने पर उत्पन्न होता है । अश्रद्धा होने से ही अविनय होता है इसलिए अविनय भी मिथ्यात्व है ।

प्र. २८. आशातना मिथ्यात्व का क्या अर्थ है ?

उ. आशातना का अर्थ है - विपरीत होना, प्रतिकूल व्यवहार करना, विरोधी हो जाना, निन्दा करना । देव, गुरु और धर्म की आशातना करना, इनके प्रति ऐसा व्यवहार करना कि जिससे ज्ञानादि गुणों और ज्ञानियों को ठेस पहुँचे।

प्र. २९. मिथ्यात्व की प्ररूपणा क्यों की गयी है ?

उ. अर्हत भगवान् ने जो मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया उसका यही उद्देश्य है कि भव्य जीव सुखपूर्वक मोक्ष नगर में पहुँचे, हिंसादि मय कुमार्ग, हिंसा मिश्रित कुमार्ग या लौकिक सुखप्रद पुण्यमार्ग में भटक न जावें या अन्य इन्हें भटका न दें । संसार परिभ्रमण से बचे ।

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के स्थान का पाठ

१. उच्चारेसु वा २. पासवणेसु वा ३. खेलेसु वा ४. सिंघाणेसु वा ५. वंतेसु वा ६. पित्तेसु वा ७. पूएसु वा ८. सोणिएसु वा ९. सुक्केसु वा १०. सुक्कपुग्गल परिसाडेसु वा ११. विगयजीवकलेवरेसु वा १२ इत्थीपुरिस संजोगेसु वा १३. णगरणिद्धमणेसु वा १४. सव्वेसु चेव असुइ-ठाणेसु वा । इन चौदह स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की विराधना की हो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
उच्चारेसु	मनुष्यों की विष्ठा (मल) में
पासवणेसु	मूत्र मे
खेलेसु	कफ मे
सिंघाणेसु	नाक के मैल (श्लेष्म) में
वंतेसु	वमन (उल्टी) मे
पित्तेसु	पित्त में
पूएसु	पीप (राध) में
सोणिएसु	रक्त (खून) मे

सुक्केसु	पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज में
सुक्कपुग्गल परिसाडेसु	सूखे हुए पुद्गल (उच्चारादिक)पुनः गीले होने पर उनमें पैदा होने वाले
इत्थीपुरिस संजोगेसु	स्त्री पुरुष के संयोग (मैथुन) मे
विगय जीवकलेवरेसु	जीव रहित मनुष्य के शरीरो में
णगरणिद्धमणेसु	नगर की नालियों - गटरों में
सव्वेसु चेव असुइ-ठाणेसु वा	अशुचि के कुछ स्थान या सभी स्थान एक जगह मिल जाने पर उन स्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम जीव ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. संमूर्च्छिम मनुष्य किसे कहते हैं ?

उ. संज्ञी मनुष्यों के मल-मूत्र आदि अशुचि मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य संमूर्च्छिम मनुष्य कहलाते हैं । ये बिना गर्भ के उत्पन्न होते हैं ।

प्र. २. क्या संमूर्च्छिम मनुष्य अपने को दिखायी देते हैं ?

उ. नहीं, संमूर्च्छिम मनुष्य अपने को दिखाई नहीं देते हैं क्योंकि वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि चर्म-चक्षुओ से नहीं देखे जा सकते।

प्र. ३. **सव्वेसु चेव असुइठाणेसु** से क्या आशय समझना चाहिये

उ. एक से तेरह स्थानों में से दो, तीन, चार आदि बोल शामिल करने से जीवों की उत्पत्ति हो तो वह इस अन्तिम भेद में गिना जाता है।

१. पगामसिज्जाए का पाठ

(निद्रा दोष निवृत्ति का पाठ)

इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए निगामसिज्जाए संथारा-उव्वट्टणाए परियट्टणाए आउंटण पसारणाए छप्पइ संघट्टणाए कूइए, कक्कराइए, छीए, जंभाइए, आमोसे, ससरक्खामोसे, आउलमाउलाए, सुवणवत्तियाए ❀, इत्थी(पुरिस) विप्परियासियाए✡, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणविप्परियासियाए, पाणभोयण विप्परियासियाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
इच्छामि	इच्छा करता हूँ
पडिक्कमिउं	प्रतिक्रमण करने के लिये
पगामसिज्जाए	१. मर्यादा से अधिक लम्बी, चौड़ी, जाड़ी (गद्देदार) शय्या (बिछौना) २. मर्यादा से अधिक सोने से

❀ आचार्य हरिभद्र ''सुवणवत्तियाए'' का सम्बन्ध ''आउलमाउलाए'' के साथ जोड़ते हैं । स्वप्न मे विवाह युद्धादि के अवलोकन से आकुलता व्याकुलता रही हो अर्थात् स्वप्न के निमित्त से होनेवाली संयम विरुद्ध मानसिक क्रिया ।

✡ वहनें 'इत्थीविप्परियासियाए' के स्थान पर 'पुरिसविप्परियासियाए' पढे।

निगामसिज्जाए	१. प्रतिदिन बढ़िया गद्देदार शय्या करने से २. बार बार मर्यादा से अधिक सोने से
संथारा उव्वट्टणाए	अविधि से करवट बदलने से
परियट्टणाए	अयतना से बार-बार करवट बदलने से (अथवा एक करवट से दूसरी करवट बदलना। उद्वर्तन और परिवर्तन का अर्थ पुनः वही पहले वाली करवट ले लेना)
आउंटणपसारणाए	हाथ और पैर आदि अंग अयतना से संकोचने तथा फैलाने से
छप्पइ संघट्टणाए	जूं आदि क्षुद्र जीवों को कठोर स्पर्श के द्वारा पीड़ा पहुंचाने से
कूइए	१. अविधि से खांसते हुए २. कुचेष्टा करने से अर्थात् स्त्री आदि के भोग की इच्छा से, मनमाना बोलने से फूंके मारने से अर्थात् निद्रा प्रलाप से
कक्कराइए	कर्करायित-कुड़कुडाना-शय्या के दोष कहते हुए बड़बड़ाना
छीए	अविधि (अयतना) से छींकने से
जंभाइए	अविधि (अयतना) से उबासी लेने से
आमोसे	बिना पूंजे स्पर्श करते हुए (खुजलाते हुए)
ससरक्खामोसे	सचित्त रज से युक्त (खरडे हुए) वस्त्रादि का स्पर्श करने से

ाउलमाउलाए	चित्त की आकुलता व्याकुलता से
्वणवत्तियाए	स्वप्न के निमित्त से
त्थीविप्परियासियाए	स्त्रीसम्बन्धी विपर्यास से (संयम विरुद्ध प्रवृत्ति से) स्वप्न में स्त्री संग किया हो
द्विविप्परियासियाए	दृष्टि के विपर्यास से (स्वप्न में स्त्री को अनुराग दृष्टि से देखा हो)
णविप्परियासियाए	मन के विपर्यास से (स्वप्न मे मन के अन्दर विकार आया हो या मन दूपित हुआ हो)
ाणभोयण विप्परि-यासियाए	पानी और भोजन के विपर्यास से (स्वप्नदशा मे रात्रि में भोजन पानी की इच्छा की हो या भोजन पान किया हो)
जो	जो
मे	मैंने
देवसिओ	दिवस सम्बन्धी
अइयारो	अतिचार (शयन सम्बन्धी)
कओ	किया हो
तस्स	उसका
मिच्छा	मिथ्या हो
मि	मेरा
दुक्कडं	पाप

भावार्थ - शयन सम्बन्धी प्रतिक्रमण करना चाहता हूँ । शयनकाल मे यदि बहुत देर तक सोता रहा हूँ अथवा बार-बार बहुत देर तक सोता रहा हूँ, अयतना के साथ एक बार करवट ली

हो, अथवा बार-बार करवट ली हो, हाथ पैर आदि अंग अय
से समेटे हों अथवा पसारे हों, यूका-जूं आदि जीवो को कठ
स्पर्श के द्वारा पीड़ा पहुँचाई हो, बिना यतना के अथवा जोर
खांसी की हो अथवा शब्द किया हो, 'यह शय्या बड़ी विषम त
कठोर है' - इत्यादि शय्या के दोष कहे हों, बिना यतना कि
छींक व जंभाई ली हो, बिना प्रमार्जन किये शरीर को खुजला
हो अथवा अन्य किसी वस्तु को छुआ हो, सचित्त रज वाली वस्
का स्पर्श किया हो, स्वप्न में विवाह युद्धादि के अवलोकन से
आकुल व्याकुलता रही हो- स्वप्न में मन भ्रांत हुआ हो, स्वप्न में
स्त्री-संग किया हो, स्वप्न में स्त्री को अनुरागभरी दृष्टि से देख
हो, स्वप्न में मन में विकार आया हो, स्वप्न दशा में रात्रि
भोजन-पान की इच्छा की हो या भोजन-पान किया हो अर्थात्
मैंने दिन में जो भी शयन संबन्धी अतिचार किया हो, वह सब
पाप मेरा मिथ्या-निष्फल हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. इसे निद्रा दोष निवृत्ति का पाठ क्यों कहते हैं ?

उ. यह पाठ शयन संबन्धी अतिचारों का प्रतिक्रमण करने के लिए है । सोते समय जो भी शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक भूल हुई हो, संयम की सीमा के बाहर अतिक्रमण हुआ हो, किसी भी तरह का विपर्यास हुआ हो, उन सब के लिए पश्चात्ताप करने का, मिच्छामि दुक्कडं देने का विधान प्रस्तुत पाठ में किया गया है अतः इसे निद्रा दोष निवृत्ति का पाठ कहा जाता है ।

प्र २. विपर्यास का क्या अर्थ है ?

उ. किसी भी प्रकार की संयम विरुद्ध वृत्ति या प्रवृत्ति विपर्यास है । मन में विकार भाव आना "मनोविपर्यास" एवं रात्रि मे भोजन पानी की इच्छा "पान भोजन विपर्यास" है ।

प्र ३. निद्रा दोष निवृत्ति पाठ कब बोलना चाहिये ?

उ सायंकाल, प्रातःकाल प्रतिक्रमण में बोलने के अलावा जब भी साधक सोकर उठे, उसे निद्रा दोष निवृत्ति का यह पाठ अवश्य बोलना चाहिये।

२. गोचर - चर्या सूत्र

(गोयरचरियाए का पाठ)

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाड-कवाड-उग्घाडणाए, साणा-वच्छा-दारा संघट्ट-णाए, मंडीपाहुडियाए, बलिपाहुडियाए, ठवणा-पाहुडियाए, संकिए, सहसागारे, अणेसणाए, पाणभोयणाए, बीयभोयणाए, हरियभोयणाए, पच्छा-कम्मियाए, पुरेकम्मियाए, अदिट्ठहडाए, दगसंसट्ठहडाए, रयसंसट्ठहडाए, परिसाडणियाए, परिट्ठावणियाए, ओहासणभिक्खाए, जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए, अपरिसुद्धं परिग्गहियं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठवियं जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूं
गोयरच्चरियाए	गोचरचर्या रूप
भिक्खायरियाए	भिक्षाचर्या में
उग्घाड-कवाड	(चूलिका आदि) (निषिद्ध) अधखुले किवाड़ों को या अनिषिद्ध किवाड़ो को बिना आज्ञा
उग्घाडणाए	खोलने से
साणावच्छादारा	कुत्ते, बछड़े और बच्चों का
संघट्टणाए	संघट्टा करने से
मंडीपाहुडियाए	अग्रपिण्ड की भिक्षा से
बलिपाहुडियाए	बलिकर्म की भिक्षा से
ठवणापाहुडियाए	स्थापना भिक्षा से (भिक्षुओं को देने के उद्देश्य से अलग रखा हुआ भोजन लेना)
संकिए	शंकित आहार लेने से (आधाकर्मादि दोषो की शंका वाला आहार लेना)
सहसागारे	शीघ्रता में लेने से
अणेसणाए	बिना एषणा (छानबीन) के लेने से
पाणभोयणाए	जिसमे कोई जीव पड़ा हो, ऐसा भोज लेने से
बीयभोयणाए	बीजवाले भोजन के लेने से
हरियभोयणाए	हरित (सचित्त वनस्पति) वाले भोज को लेने से
पच्छाकम्मियाए	पश्चात्कर्म से (साधु को आहार देने

	बाद उन हाथ या बर्तनों को सचित्त जल से धोने के कारण लगने वाला दोष)
पुरेकम्मियाए	पुरः कर्म से (साधु को आहार देने से पहले सचित्त जल से हाथ या बर्तन आदि धोने के कारण लगने वाला दोष)
अदिट्ठहडाए	अदृष्ट (बिना देखी) वस्तु के लेने से
दगसंसट्ठहडाए	सचित्त जल से संसृष्ट आहार आदि लेने से
रयसंसट्ठहडाए	सचित्त रज से संसृष्ट आहारादि लेने से
परिसाडणियाए	देते समय मार्ग मे अयतना से अर्थात् घुटने के ऊपर से बिखेरता हुआ दिया जाने वाला आहारादि लेने से लगने वाला दोष
परिट्ठावणियाए	परिष्ठापनिका से
ओहासणभिक्खाए	१ निष्कारण उत्तम वस्तु मांगकर भिक्षा लेने से २. दीनता पूर्वक आहारादि की याचना करने से
जं उग्गमेणं	जो आधाकर्मादि उद्‌गम दोषों से
उप्पायणेसणाए	धात्री आदि उत्पादन और शंकितादि एषणा के दोषों से
अपरिसुद्धं	अशुद्ध आहार
परिग्गहियं	ग्रहण किया हो
परिभुत्तं वा	अथवा भोगा हो
जं	(और) जो (भूल से लिया हुआ अशुद्ध आहार)

न परिट्ठवियं	नहीं परठा हो
तस्स	उसका
मिच्छा	मिथ्या हो
मि	मेरा
दुक्कडं	दुष्कृत (पाप)

भावार्थ - गोचर चर्या रूप से भिक्षाचर्या में यदि ज्ञात अथवा अज्ञात किसी भी रूप में जो भी अतिचार - दोष लगा हो, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । अधखुलें किवाड़ों को खोलना, कुत्ते, बछड़े और बच्चों का संघट्टा - स्पर्श करना, मण्डी प्राभृतिका-अग्रपिण्ड लेना, बलिप्राभृतिका-बलि कर्मार्थ तैयार किया हुआ भोजन लेना, स्थापनाप्राभृतिका-भिक्षुओं को देने के उद्देश्य से अलग रखा हुआ भोजन लेना, शंकित-आधाकर्मादि दोषों की शंका वाला भोजन लेना, सहसाकार-शीघ्रता में आहार लेना, बिना एषणा छानबीन किये लेना, प्राण-भोजन-जिसमें कोई जीव पड़ा हो ऐसा भोजन लेना, बीज-भोजन-बीजों वाला भोजन लेना, हरित भोजन-सचित्त वनस्पति वाला भोजन लेना, पश्चात्कर्म, पुरः कर्म, अदृष्टाहृत-बिना देखा भोजन लेना, उदकसंसृष्टाहृत-सचित्त जल के साथ स्पर्श वाली वस्तु लेना, रजसंसृष्टाहृत-सचित्त रज से स्पृष्ट वस्तु लेना, परिशाटनिका -देते समय मार्ग में गिरता - बिखरता हुआ दिया जाने वाला भोजन लेना, पारिष्ठापनिका-आहार देने के पात्र में पहले से रहे हुए किसी भोजन को डालकर दिया जाने वाला अन्य भोजन लेना, बिना कारण विशिष्ट पदार्थ मांग कर लेना, उद्गम-आधाकर्म आदि उद्गम के दोषों से सहित

ोजन लेना, उत्पादन – धात्री आदि साधु की तरफ से लगने ाले दोषों से सहित भोजन लेना, एषणा–ग्रहणैषणा के शंका ादि दस दोषो से सहित भोजन लेना ।

उपर्युक्त दोषों वाला अशुद्ध–साधु मर्यादा की दृष्टि से अयुक्त ाहार पानी ग्रहण किया हुआ भोग लिया हो किन्तु दूषित जानकर ो परठा न हो तो तज्जन्य समस्त पाप मिथ्या हो ।

प्रश्नोत्तर

१. गोचरी (गोचरचर्या) किसे कहते हैं ?

जिस प्रकार गाय वन मे एक–एक घास का तिनका जड़ से न उखाड़ कर ऊपर से ही खाती हुई घूमती है । अपनी क्षुधा निवृत्ति कर लेती है और गोचर भूमि एवं वन की हरियाली को भी नष्ट नही करती है उसी प्रकार मुनि भी किसी गृहस्थ को पीड़ा नहीं देता हुआ थोड़ा–थोड़ा आहार सभी के यहां से ग्रहण कर अपनी क्षुधा पूर्ति करता है । गाय के समान मुनि की इस चर्या को "गोचरी" कते हैं । दशवैकालिक सूत्र अध्ययन १ में इसके लिए मधुकर–भ्रमर की उपमा दी है । भ्रमर भी फूलों को कुछ भी हानि पहुँचाए बिना थोड़ा–थोड़ा रस ग्रहण कर आत्म–तृप्ति कर लेता है ।

ा. २. 'मंडीपाहुडियाए' (मण्डी प्राभृतिका) दोष क्या है ?

उ तैयार किए हुए भोजन के कुछ अग्र अंश को पुण्यार्थ किसी पात्र में निकालकर अलग रख दिया जाता है, जिसे अग्रपिण्ड कहते हैं । ऐसे अग्रपिण्डक को भिक्षा में

ग्रहण करना "मंडी प्राभृतिका" कहलाता है । य पुण्यार्थ होने से साधु के लिए निषिद्ध है । अथवा साधु के आने पर पहले अग्र भोजन दूसरे पात्र में निकाल है और फिर शेष में से दे तो वह मंडीप्राभृतिका " दोष है, क्योंकि इसमें प्रवृत्ति दोष लगता है ।

प्र.३. **'बलिपाहुडियाए'** (बलि प्राभृतिका) किसे कहते हैं ?

उ. देवता आदि के लिए पूजार्थ तैयार किया हुआ भोज 'बलि' कहलाता है । वह भिक्षा में ग्रहण नहीं करन चाहिये । यदि ग्रहण करे तो दोष लगता है । अथव साधु को दान देने से पहले दाता के द्वारा सर्वप्रथ आवश्यक बलिकर्म करने के लिए बलि को चारो दिशाओं में फेंक कर अथवा अग्नि में डालकर उसके बाद जे भिक्षा दी जाती है, वह 'बलि प्राभृतिका' है। ऐसा कर से साधु के निमित्त से अग्नि आदि जीवों की विराधन का दोष होता है ।

प्र. ४. **ठवणा पाहुडियाए** (स्थापना प्राभृतिका) दोष कै लगता है ?

उ. साधु के उद्देश्य से पहले से रखा हुआ भोजन लेन स्थापना प्राभृतिका दोष है । अथवा अन्य भिक्षुओं के लिये अलग निकाल कर रखे हुए भोजन मे से भिक्षा ले से स्थापना प्राभृतिका दोष लगता है ।

प्र. ५. पश्चात्कर्म दोष क्या है ?

उ. साधु-साध्वी को आहार देने के बाद तदर्थ सचित्त ज से हाथ या पात्रों को धोने के कारण लगने वाला दो पश्चात् कर्म कहलाता है ।

प्र. ६. पुरःकर्म किसे कहते हैं ?

उ. साधु साध्वी को आहार देने से पहले सचित्त जल से हाथ या पात्र के धोने से लगने वाला दोष 'पुरःकर्म' कहलाता है ।

प्र ७ अदिट्ठहडाए (अदृष्टाहृत) दोष क्या है ?

उ अदृष्ट -दिखाई नहीं देने वाले (दूर या अंधेरे) स्थान से लाया हुआ आहार लेने से यह दोष लगता है । गृहस्थ के घर पर पहुँच कर, साधु को जो भी वस्तु लेनी हो वह स्वयं जहां रखी हो, अपनी आंखों से देख कर लेनी चाहिये । यदि कोठे आदि में रखी हुई वस्तु बिना देखे ही गृहस्थ के द्वारा लाई हुई ले ली जाती है तो वह 'अदृष्टाहृत' दोष से दूषित होने के कारण अग्राह्य होती है । देय वस्तु न मालूम किस सचित्त वस्तु आदि पर रखी हो, संघट्टे से युक्त हो अतः उसके लेने मे जीव विराधना दोष लगता है ।

३. काल प्रतिलेखना सूत्र

(चाउक्काल सज्झायस्स अर्थात् स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोष निवृत्ति का पाठ)

पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए उभओ कालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए, दुप्प-डिलेहणाए, अप्पमज्जणाए, दुप्पमज्जणाए अइक्कमे,

वइक्कमे, अइयारे अणायारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
चाउक्कालं	चार काल में
सज्झायस्स	स्वाध्याय के
अकरणयाए	न करने से
उभओ कालं	दोनों काल में
भण्डोवगरणस्स	भण्डोपकरण की
अप्पडिलेहणाए	प्रतिलेखना नहीं करने से
दुप्पडिलेहणाए	अविधि से प्रतिलेखना करने से
अप्पमज्जणाए	प्रमार्जन नहीं करने से
दुप्पमज्जणाए	अविधि से प्रमार्जन करने से
अइक्कमे	अतिक्रम सम्बन्धी
वइक्कमे	व्यतिक्रम सम्बन्धी
अइयारे	अतिचार सम्बन्धी
अणायारे	अनाचार सम्बन्धी
जो मे देवसिओ अइयारो	दिवस सम्बन्धी जो अतिचार
कओ तस्स	किया हो वह
मिच्छामि दुक्कडं	मेरा पाप निष्फल हो ।

भावार्थ – स्वाध्याय तथा प्रतिलेखना सम्बन्धी प्रतिक्रमण करता हूँ । यदि प्रमादवश दिन और रात्रि के प्रथम तथा अन्तिम प्रहर रूप चार काल में स्वाध्याय न की हो, प्रातः तथा संध्या दोनों काल में वस्त्र, पात्र आदि भण्डोपकरण की प्रतिलेखना न की हो

या अच्छी तरह प्रतिलेखना न की हो, प्रमार्जना न की हो या अच्छी तरह प्रमार्जना न की हो, फलस्वरूप अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार सम्बन्धी जो भी दिवस सम्बन्धी अतिचार-दोप लगा हो तो वह सब पाप मेरे लिए मिथ्या-निष्फल हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उ. स्वाध्याय शब्द के अनेक अर्थ है - १. सु+अध्याय अर्थात् सुष्ठु अध्याय - अध्ययन का नाम स्वाध्याय है । निष्कर्प यह है कि - आत्मकल्याणकारी श्रेष्ठ पठन-पाठन रूप अध्ययन का नाम ही स्वाध्याय है । २. स्वाध्याय का अर्थ है - सुष्ठु = भलीभांति आ - मर्यादा के साथ अध्ययन करने का नाम स्वाध्याय है । ३. स्वाध्याय - स्व+अध्याय यानी अपने आपका अध्ययन करना और देखभाल करते रहना कि अपना जीवन ऊँचा उठ रहा है या नही ?

प्र. २. स्वाध्याय के कितने भेद है ?

उ स्वाध्याय के पांच भेद बतलाए गए है - **१. वाचना** - गुरुमुख से सूत्र पाठ ले कर जैसा हो वैसा ही उच्चारण करना, वाचना है । **२. पृच्छना** - सूत्र पर जितना भी अपने से हो सके तर्क वितर्क चिंतन मनन करन। चाहिए और ऐसा करते हुए जहाॅ भी शंका हो गुरुदेव से समाधान के लिए पूछना, पृच्छना है । हृदय में उत्पन्न हुई शंका को शंका के रूप मे ही रखना ठीक नहीं होता ।

३. परिवर्तना - सूत्र - वाचना विस्मृत न हो जाए इसलिये सूत्र पाठ को बार-बार गुणनिका - परिवर्तन करना, फेरना परिवर्तना है । **४. अनुप्रेक्षा**- सूत्र वाचना के संबन्ध में तात्त्विक चिंतन करना, अनुप्रेक्षा है । अनुप्रेक्षा, स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण अंग है । **५. धर्मकथा** - सूत्र-वाचना, पृच्छना, परिवर्तना और अनुप्रेक्षा के बाद जब तत्त्व का वास्तविक स्वरूप समझ में आ जाय, तब धर्मोपदेश देना, धर्मकथा है ।

प्र. ३. स्वाध्याय से क्या लाभ है ?

उ. बारह प्रकार के तप में स्वाध्याय अन्तरंग तप है । स्वाध्याय का फल बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन २९ में प्रभु ने फरमाया है कि -"**सज्झाएणं णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ**" - स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ज्ञान का अलौकिक प्रकाश जगमगा उठता है । स्वाध्याय के द्वारा ही हित और अहित का ज्ञान होता है, पाप पुण्य का पता चलता है, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान होता है । स्वाध्याय के द्वारा ही धर्म, अधर्म का पता लगा सकते हैं और अधर्म का त्याग कर धर्म में प्रवृत्ति करते हुए अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं ।

प्र. ४. प्रतिलेखना और प्रमार्जना क्यों आवश्यक है ?

उ. वस्त्र पात्र आदि को अच्छी तरह खोल कर चारो ओर से देखना प्रतिलेखना है और रजोहरण तथा पूंजणी के द्वारा अच्छी तरह साफ करना प्रमार्जना है ।

साधक के पास जो वस्त्र, पात्र आदि उपधि हो, उसकी दिन मे दो बार - प्रातः और सायं - प्रतिलेखना करनी होती है । उपधि को बिना देखे - भाले उपयोग में लाने से हिंसा का दोष लगता है। उपधि में सूक्ष्म जीवों के उत्पन्न हो जाने की अथवा बाहर के जीवों के आश्रय लेने की संभावना रहती है अतः प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए जीवों को देखना चाहिए और यदि कोई जीव दृष्टिगत हो तो उसे प्रमार्जन के द्वारा किसी भी प्रकार की पीड़ा पहुंचाए बिना एकान्त स्थान में धीरे से छोड़ देना चाहिये । यह अहिंसा महाव्रत की सूक्ष्म साधना है । धर्म के प्रति जागरूकता है अतः प्रतिलेखना और प्रमार्जना आवश्यक है ।

प्र ५ दुष्प्रतिलेखना और दुष्प्रमार्जन का क्या अर्थ है ?

उ. आलस्यवश शीघ्रता में अविधि से देखना, दुष्प्रतिलेखना है और शीघ्रता में बिना विधि से उपयोगहीन दशा में प्रमार्जन करना, दुष्प्रर्माजन है ।

प्र ६. स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोष निवृत्ति का पाठ बोलना क्यों आवश्यक है ?

उ. शास्त्रोक्त समय पर स्वाध्याय या प्रतिलेखना न करना, शास्त्र निषिद्ध समय पर करना, स्वाध्याय एवं प्रतिलेखना पर श्रद्धा न करना तथा इस संबन्ध में मिथ्या प्ररूपणा करना या उचित विधि से न करना, इत्यादि रूप में स्वाध्याय और प्रतिलेखना संबन्धी जो अतिचार - दोष लगे हों, उनसे मुक्त होने के लिये स्वाध्याय और प्रतिलेखन दोष निवृत्ति पाठ बोलना आवश्यक है ।

४. तेतीस बोल का पाठ

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे । पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं-राग बंधणेणं दोस बंधणेणं। पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं - मणदंडेणं, वयदंडेणं, कायदंडेणं । पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं - मणगुत्तीए, वयगुत्तीए, कायगुत्तीए । पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं - मायासल्लेणं, नियाणसल्लेणं, मिच्छादंसणसल्लेणं । पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं -इड्ढिगारवेणं, रसगारवेणं, सायागारवेणं। पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं - णाण-विराहणाए, दंसण-विराहणाए, चरित्त विराहणाए । पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं-कोहकसाएणं, माण कसाएणं, माया कसाएणं, लोहकसाएणं ।पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए । पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं इत्थीकहाए *, भत्तकहाए, देसकहाए, रायकहाए । पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं - अट्टेणं झाणेणं, रुद्देणं झाणेणं, धम्मेणं झाणेणं, सुक्केणं झाणेणं ।पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं -काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, पारितावणियाए, पाणाइवाय किरियाए । पडिक्कमामि

---

* श्राविकाएं 'इत्थीकहाए' के स्थान पर 'पुरिसकहाए' कहे ।

पंचहिं कामगुणेहिं–सद्देणं, रूवेणं, गंधेणं, रसेणं, फासेणं। पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं–सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं । पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं - इरियासमिईए, भासासमिईए, एसणासमिईए, आयाण–भंड–मत्त णिक्खेवणासमिईए, उच्चार–पासवण– खेल जल्ल–सिंघाण–परिट्ठावणिया समिईए । पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं - पुढवीकाएणं, आउकाएणं, तेउकाएणं, वाउकाएणं, वणस्सइकाएणं, तसकाएणं । पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं - किण्हलेसाए, नीललेसाए, काउलेसाए, तेउलेसाए, पम्हलेसाए, सुक्कलेसाए । पडिक्कमामि सत्तहिं भयट्ठाणेहिं, अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं, नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं, दसविहे समणधम्मे, एगारसहिं [एक्कारसहिं] उवासगपडिमाहिं, बारसहिं भिक्खुपडिमाहिं तेरसहिं किरियाठाणेहिं, चोद्दसहिं भूयगामेहिं, पण्णरसहिं परमाहम्मिएहिं, सोलसहिं गाहासोलसएहिं, सत्तरसविहे असंजमे, अट्ठारसविहे अबम्भे एगूणवीसाए णायज्झयणेहिं वीसाए असमाहिठाणेहिं एगवीसाए सबलेहिं, बावीसाए परीसहेहिं, तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं, चोवीसाए देवेहिं, पणवीसाए

भावणाहिं, छव्वीसाए दसाकप्पववहाराणं उद्देसण-
कालेहिं, सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं अट्ठावीसाए
आयारप्पकप्पेहिं एगूणतीसाए पावसुयप्पसंगेहिं तीसाए
महामोहणीयठाणेहिं एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं बत्तीसाए
जोगसंगहेहिं तेत्तीसाए आसायणाहिं - १. अरहंताणं
आसायणाए २ सिद्धाणं आसायणाए ३ आयरियाणं
आसायणाए ४ उवज्झायाणं आसायणाए ५ साहूणं
आसायणाए ६ साहुणीणं आसायणाए ७ सावयाणं
आसायणाए ८ सावियाणं आसायणाए ९ देवाणं
आसायणाए १० देवीणं आसायणाए ११ इहलोगस्स
आसायणाए १२ परलोगस्स आसायणाए
१३ केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स आसायणाए १४ सदेव
मणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए १५ सव्वपाण
भूयजीवसत्ताणं आसायणाए १६ कालस्स आसायणाए
१७. सुयस्स आसायणाए १८ सुयदेवयाए आसायणाए
१९ वायणायरियस्स आसायणाए २० जं वाइद्धं २१
वच्चामेलियं २२ हीणक्खरं २३ अच्चक्खरं २४ पयहीणं
२५ विणयहीणं २६ जोगहीणं २७ घोसहीणं २८ सुट्ठुदिण्णं
२९ दुट्ठुपडिच्छियं ३० अकाले कओ सज्झाओ ३१ काले
न कओ सज्झाओ ३२ असज्झाइए सज्झाइयं ३३ सज्झाइए
न सज्झाइयं । इन तेतीस बोल में जानने योग्य को नहीं जा

हों, छोड़ने योग्य को नहीं छोड़े हों और आदरने योग्य को नहीं आदरे हों, तो जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं ।

मूल शब्द	अर्थ
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ (निवृत्त होता हूँ)
एगविहे	एक प्रकार के
असंजमे	असंयम से (अविरतिरूप)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
दोहिं बंधणेहिं	दोनों बन्धनों से (दो प्रकार के बन्धनों से लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ)
राग बंधणेणं	राग के बन्धन से
दोस बंधणेणं	द्वेष के बन्धन से
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं दंडेहिं	तीन दण्डो से (तीन प्रकार के दण्डों से लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ)
मणदंडेणं	मन के दण्ड से
वयदंडेणं	वचन के दण्ड से
कायदंडेणं	काया के दण्ड से
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं गुत्तीहिं	तीन गुप्तियो से
मणगुत्तीए	मनोगुप्ति से
वयगुत्तीए	वचनगुप्ति से
कायगुत्तीए	कायगुप्ति से (गुप्तियो का आचरण



	करते हुए प्रमादवश जो भी तत्सम्बन्धी विपरीत आचरण रूप दोष लगे हों उनका प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं सल्लेहिं	तीन शल्यों से (लगे हुए दोषो का)
माया सल्लेणं	माया के शल्य से
नियाण सल्लेणं	निदान के शल्य से
मिच्छादंसण सल्लेणं	मिथ्यादर्शन के शल्य से (तीनों शल्यों से होने वाले दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं गारवेहिं	तीनों गौरवों से (लगने वाला दोष का)
इड्ढिगारवेणं	ऋद्धि गौरव से
रसगारवेणं	रस गौरव से
सायागारवेणं	साता गौरव से (तीन गौरवों से लगने वाले दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
तिहिं विराहणाहिं	तीनों विराधनाओं से (होने वाले दोषों का)
णाणविराहणाए	ज्ञान विराधना से
दंसणविराहणाए	दर्शन विराधना से
चरित्तविराहणाए	चारित्र विराधनासे (तीनों विराधनाओं से होने वाले दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
चउहिं कसाएहिं	चारों कषायों से (होने वाले दोषों का

ोह कसाएणं	क्रोध कषाय से
ाण कसाएणं	मान कपाय से
ाया कसाएणं	माया कषाय से
ोह कसाएणं	लोभ कषाय से (चारों कपायो के द्वारा होने वाले दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ)
ाडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
३उहिं सण्णाहिं	चारों संज्ञाओ से (जो भी अतिचार लगा हो तो उसका)
ाहारसण्णाए	आहार संज्ञा से
ायसण्णाए	भय संज्ञा से
्हुणसण्णाए	मैथुन संज्ञा से
ारिग्गहसण्णाए	परिग्रह संज्ञा से (चारो संज्ञाओ के द्वारा जो भी अतिचार दोष लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ)
ाडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
ाउहिं विकहाहिं	चारों विकथाओ से (जो अतिचार लगा हो)
त्थीकहाए	स्त्री की कथा से
ात्तकहाए	भोजन की कथा से
ासकहाए	देश की कथा से
ायकहाए	राज की कथा से (इन चारो विक्थाओं के द्वारा जो अतिचार लगा हो उससे निवृत्त होता हूँ)
ाडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ

चउहिं झाणेहिं	चारों ध्यानों से (आर्तध्यान और रौद्रध्यान करने से तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान के न करने से जो भी अतिचार दोष लगा हो तो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ)
अट्टेणं झाणेणं	आर्त ध्यान से
रुद्देणं झाणेणं	रौद्रध्यान से
धम्मेणं झाणेणं	धर्म ध्यान से
सुक्केणं झाणेणं	शुक्ल ध्यान से
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं किरियाहिं	पाँच क्रियाओं से
काइयाए	कायिकी से
अहिगरणियाए	आधिकरणिकी से
पाउसियाए	प्राद्वेपिकी से
पारितावणियाए	पारितापनिकी से
पाणाइवायकिरियाए	प्राणातिपात क्रिया से (इन पांच क्रियाओं के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ ।)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूं (पांच कामगुणों के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो)
पंचहिं कामगुणेहिं	पांच कामगुणों से
सद्देणं	शब्द से
रूवेणं	रूप से
गंधेणं	गंध से
रसेणं	रस से

फासेणं	स्पर्श से (इन पांच कामगुणों के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूं)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं महव्वएहिं	पांच महाव्रतों से (इन पांचों महाव्रतों को सम्यक् रूप से पालन न करने से)
सव्वाओ	सब प्रकार के
पाणाइवायाओ वेरमणं	प्राणातिपात से निवृत्ति
सव्वाओ	सब प्रकार के
मुसावायाओ	मृषावाद से
वेरमणं	निवृत्ति
सव्वाओ	सब प्रकार के
अदिण्णादाणाओ वेरमणं	अदत्तादान से निवृत्ति
सव्वाओ	सब प्रकार के
मेहुणाओ वेरमणं	मैथुन से निवृत्ति
सव्वाओ	सब प्रकार के
परिग्गहाओ वेरमणं	परिग्रह से निवृत्ति (इन पांचो महाव्रतो को सम्यक् रूप से पालन न करने से जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
पंचहिं समिईहिं	पाँचों समितियो से (सम्यक् प्रकार से पालन न करने से जो भी अतिचार लगा हो)

इरियासमिईए	ईर्या समिति से
भासासमिईए	भाषा समिति से
एसणासमिईए	एषणा समिति से
आयाणभंडमत्त-	आदानभण्डमात्र
निक्खेवणा समिईए	निक्षेपणा समिति से
उच्चारपासवणखेल	उच्चार (टट्टी), प्रस्रवण (मूत्र), कफ,
जल्ल	शरीर का मैल
सिंघाणपरिट्ठावणिया	नाक का मैल (इनको) परठने की
समिईए	समिति से (इन पांचों समितियो अर्थात् समितियो का सम्यक् प्रकार पालन न करने से जो भी अतिचार ल हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ)
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूं
छहिं जीवनिकाएहिं	छहों जीवनिकायों से [इन जीवनिकायों से (हिंसा करने से) जो अतिचार लगा हो]
पुढविकाएणं	पृथ्वीकाय से
आउकाएणं	अप्काय से
तेउकाएणं	तेजः काय से
वाउकाएणं	वायुकाय से
वणस्सइकाएणं	वनस्पतिकाय से
तसकाएणं	त्रसकाय से (इन छह जीवनिका अर्थात् इन जीवों की हिंसा करने

	भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूॅ ।
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ (तीन अशुभ लेश्या में प्रवृत्ति एवं तीन शुभ लेश्याओं का आचरण न करने से)
छहिं लेसाहिं	छहो लेश्याओ से
किण्ह लेसाए	कृष्ण लेश्या से
नील लेसाए	नील लेश्या से
काउ लेसाए	कापोत लेश्या से
तेउ लेसाए	तेजोलेश्या से
पउम (पम्ह) लेसाए	पद्म लेश्या से
सुक्क लेसाए	शुक्ल लेश्या से

(प्रथम तीन लेश्याओं का आचरण करने से और बाद की तीन धर्म लेश्याओ का आचरण न करने से जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूॅ)

पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूॅ
सत्तहिं भयट्ठाणेहिं	सात भय के स्थानो से (कारणों से)
अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं	आठ मद के स्थानो से
नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं	नौ ब्रह्मचर्य की गुप्तियों से (सम्यक् पालन न करने से)
दसविहे समणधम्मे	दस प्रकार के साधु धर्म मे (लगे दोषो से)
एक्कारसहिं-	ग्यारह

उवासगपडिमाहिं	श्रावक की प्रतिमाओं से (अश्रद्धा तथा विपरीत प्ररूपणा से)
बारसहिं भिक्खु पडिमाहिं	बारह भिक्षु की प्रतिमाओं से (श्रद्धा प्ररूपणा तथा आसेवना अ तरह न करने से)
तेरसहिं किरियाठाणेहिं	तेरह क्रिया के स्थानों से (क्रियाओं को करने से)
चउद्दसहिं भूयगामेहिं	चौदह जीव समूहों से (हिंसा से)
पण्णरसहिं परमाहम्मिएहिं	पन्द्रह परमाधार्मिकों से (उन जैसा भाव या आचरण करने
सोलसहिं गाहासोलसएहिं	सोलह गाथा षोडशकों से (तदनु श्रद्धा प्ररूपणा और आचरण न करने
सत्तरसविहे असंजमे	सतरह प्रकार के असंयम मे (रहने
अट्ठारसविहे अबंभे	अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य (वर्तन से)
एगुणवीसाए-णायज्झयणेहिं	उन्नीस ज्ञातासूत्र के अध्ययनो से तदनु श्रद्धा प्ररूपणा और आसेवना न करने
वीसाए असमाहि ठाणेहिं	बीस असमाधि के स्थानों से (करने
एगवीसाए सबलेहिं	इक्कीस शबल दोषों से (आसेवना करने से)
बावीसाए परीसहेहिं	बावीस परीषहों से (सहन न करने
तेवीसाए सूयगडज्झयणेहिं	तेवीस सूत्रकृतांग के अध्ययनों (तदनुसार आचरण न करने से)

चउवीसाए देवेहिं	चौबीस देवों से (उनकी अवहेलना करने से)
पणवीसाए भावणाहिं	पच्चीस भावनाओं से (आचरण न करने से)
छव्वीसाएदसाकप्प-ववहाराणं उद्देसण-कालेहिं	छब्बीस दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र के उद्देशनकालों से (तदनुकूल आचरण नहीं करने से)
सत्तावीसाए-अणगार गुणेहिं	सत्ताईस साधु के गुणो से (इनको पूर्णतः पालन न करने से)
अट्ठावीसाए-आयारप्पकप्पेहिं	अट्ठाईस आचार प्रकल्पों से (तदनुसार आचरण न करने से)
एगुणतीसाए-पावसुयप्पसंगेहिं	उनतीस पापश्रुतों के प्रसंगो से (पापश्रुतों का प्रयोग करने से)
तीसाए महामोहणीय-ट्ठाणेहिं	तीस महामोहनीय कर्म के स्थानो से (उचित श्रद्धा तथा प्ररूपणा न करने से तथा उनका सेवन करने से)
एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं	इकतीस सिद्ध गुणों से (उचित श्रद्धा तथा प्ररूपणा न करने से)
बत्तीसाए जोगसंगहेहिं	बत्तीस योग संग्रहों से (आचरण न करने से)
तेत्तीसाए आसायणाहिं	तेतीस आशातनाओं से

अरहंताणं आसायणाए	अर्हतों की आशातना से
सिद्धाणं आसायणाए	सिद्धो की आशातना से
आयरियाणं आसायणाए	आचार्यो की आशातना से
उवज्झायाणं आसायणाए	उपाध्यायों की आशातना से
साहूणं आसायणाए	साधुओ की आशातना से
साहुणीणं आसायणाए	साध्वियों की आशातना से
सावयाणं आसायणाए	श्रावकों की आशातना से
सावियाणं आसायणाए	श्राविकाओं की आशातना से
देवाणं आसायणाए	देवों की आशातना से
देवीणं आसायणाए	देवियों की आशातना से
इहलोगस्स आसायणाए	इसलोक की आशातना से
परलोगस्स आसायणाए	परलोक की आशातना से
केवलि-	केवलि
पण्णत्तस्सधम्मस्स	(सर्वज्ञ) प्ररूपित धर्म की
आसायणाए	आशातना से
सदेवमणु आऽसुरस्स-	लोक मे सभी मनुष्य, देव,
लोगस्स	असुर की
आसायणाए	आशातना से
सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं	सब प्राणी भूत जीव और सत्वो की
आसायणाए	आशातना से
कालस्स आसायणाए	काल की आशातना से
सुयस्स आसायणाए	श्रुत की आशातना से
सुयदेवयाए आसायणाए	श्रुत देवता की आशातना से

ायणायरियस्स- वाचनाचार्य की

आसायणाए आशातना से

"वाइद्धं, वच्चामेलियं, हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झाइयं, सज्झाइए न सज्झाइयं तस्स मिच्छामि दुक्कडं" -

इन शब्दों का अर्थ 'ज्ञानातिचार सूत्र' पाठ क्रमांक ३ मे देखें ।

भावार्थ - एक प्रकार के असंयम से निवृत्त होता हूँ । दो प्रकार के बंधनो से - राग बंधन और द्वेष बंधन से लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ । तीन प्रकार के दण्डों (मनोदण्ड, वचन दण्ड कायदण्ड,) से, तीन प्रकार की गुप्तियो (मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति) से और तीन प्रकार के शल्यो (मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शन शल्य) से लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ । तीन प्रकार के गौरव (ऋद्धि गौरव, रस गौरव, साता गौरव) से और तीन प्रकार की विराधनाओं (ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना और चारित्र विराधना) से होने वाले दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करता हूँ - चार प्रकार के कषायो (क्रोध, मान, माया, लोभ) से, चार प्रकार की संज्ञाओं (आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रह संज्ञा) से, चार प्रकार की विकथाओं (स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा) से और चार प्रकार के ध्यानो (आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान शुक्लध्यान) से । कायिकी.

आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातक्रिया - इन पांचों क्रियाओं के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । शब्द, रूप, गंध, रस, और स्पर्श - इन पांच कामगुणों से जो अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ सर्व प्राणातिपात विरमण, सर्व मृषावाद विरमण, सर्व अदत्ताद विरमण, सर्व मैथुन विरमण, सर्व परिग्रह विरमण-इन पांचो महाव्र का सम्यक्रूप से पालन न करने से जो भी अतिचार लगा उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । ईर्यासमिति, भाषा समिति, एप समिति, आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्रव श्लेष्मजल्लसिंघाण परिष्ठापनिका समिति, इन पांचों समितियो जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । पृथ्वीक अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, छह प्रकार के जीवों की हिंसा करने से जो अतिचार लगा उसका प्रतिक्रमण करता हूँ । कृष्णलेश्या, नील लेश्या, का लेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्लेश्या, इन छहों लेश्य के द्वारा जो भी अतिचार लगा हो उसका प्रतिक्रमण करता सात भय स्थानों से, आठ मद के स्थानों से । नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियों से - उनका सम्यक् पालन न करने से, दश विध श्रम की विराधना से, ग्यारह श्रावक प्रतिमाओं एवं बारह भिक्षु प्रतिमाओं से - उनकी श्रद्धा प्ररूपणा तथा आसेवना अच्छी त करने से, तेरह क्रिया के स्थानों से, चौदह जीवों के समू पन्द्रह परमाधार्मिकों जैसा भाव या आचरण करने से, सूत्र सूत्र के सोलह अध्ययनों से, सतरह प्रकार के असंयम से, अ

प्रकार के अब्रह्मचर्य मे वर्तने से, ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययनों से-तदनुसार संयम में न रहने से, बीस असमाधि के स्थानों से, इक्कीस शबलो से, बाईस परीषहों से यानी उनको सहन न करने से, सूत्रकृतांग सूत्र के २३ अध्ययनों से अर्थात् तदनुसार आचरण न करने से, चौबीस देवो से, पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं से, दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र के छब्बीस उद्देशन कालो से, सत्ताईस साधु के गुणों से यानी उनको पूर्णतः धारण न करने से, आचारांग तथा निशीथ सूत्र के अट्ठाईस अध्ययनों से, उनतीस पापश्रुत के प्रसंगों से, महामोहनीय कर्म के तीस स्थानों से, सिद्धो के ३१ गुणों से, बत्तीस योग संग्रहों से और तेतीस आशातनाओं से जो कोई अतिचार लगा हो, तो उसका प्रतिक्रमण करता हूँ ।

तेतीस आशातनाएँ - १ अर्हन्त २ सिद्ध ३ आचार्य ४ उपाध्याय ५ साधु ६ साध्वी ७ श्रावक ८ श्राविका ९ देव १० देवी ११ इहलोक १२ परलोक १३ केवली प्ररूपित धर्म १४ देव मनुष्य असुरो सहित समग्रलोक, १५ सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्व १६ काल १७ श्रुतदेवता १९ वाचनाचार्य इन सबकी आशातना से तथा २० सूत्र के अक्षर उलट - पलट पढ़े हो २१ एक ही शास्त्र मे अन्यान्य स्थान पर दिये गये एकार्थक सूत्रों को एक स्थान पर लाकर पढ़ा हो २२ हीन अक्षर पढे हो २३ अधिक अक्षर पढ़े हो, २४ पदहीन पढ़ा हो २५ विनय रहित पढा हो २६ अस्थिर योग से पढा हो, २७ उदात्त आदि स्वर रहित पढ़ा हो २८ शक्ति से अधिक पढाया हो २९ आगम को बुरे भाव से ग्रहण किया हो ३० अकाल

में स्वाध्याय किया हो ३१ काल में स्वाध्याय न किया हो ३२ अस्वाध्याय में स्वाध्याय किया हो ३३ स्वाध्याय में स्वाध्याय न किया हो - इन तेतीस आशातनाओं से जो भी अतिचार लगा हो उसका दुष्कृत - पाप मेरे लिए मिथ्या हो ।

इन तेतीस बोलों में से जानने योग्य बोल को जाना न हो आचरण में लाने योग्य बोल का आचरण न किया हो और छोड़ने योग्य बोल को छोड़ा न हो तो उसका पाप मिथ्या (निष्फल) हो जिन महापुरुषों ने जानने योग्य जाने हों, छोड़ने योग्य छोडे हों और आदरने योग्य आदरे हों उनकी अविनय आशातना की हो तो उसका पाप निष्फल हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. असंयम किसे कहते हैं ?

उ. सं+यम अर्थात् सावधानी पूर्वक इच्छाओं का नियमन करना संयम कहलाता है । संयम का विरोधी असंयम है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले राग द्वेष रूप कषाय भाव का नाम असंयम हैं ।

प्र. २. बंधन किसे कहते हैं ?

उ. जिसके द्वारा आठ कर्मो का बंध हो, उसे बंधन कहते हैं राग और द्वेष - ये दो बंधन हैं ।

प्र. ३. निदान शल्य किसे कहते हैं ?

उ. धर्माचरण के बदले में सांसारिक फल की कामना करना भोगों की लालसा रखना, निदान शल्य कहलाता है ।

प्र. ४ मिथ्यादर्शन शल्य क्या है ?

सत्य पर श्रद्धा न रखना एवं असत्य का कदाग्रह रखना मिथ्यादर्शन शल्य होता है । यह शल्य सम्यग्दर्शन का विरोधी है ।

ऋद्धि गौरव किसे कहते है ?

सत्कार-सम्मान, वंदन, उग्र व्रत विद्या आदि का अभिमान करना, इन्हे प्राप्त करने की लालसा रखना ऋद्धि गौरव कहलाता है ।

रस गौरव किसे कहते है ?

दूध, दही, घृत आदि मधुर एवं स्वादिष्ट रसों की इच्छानुसार प्राप्ति होने पर अभिमान करना और प्राप्ति न होने पर उनकी लालसा रखना, रस गौरव है ।

७. साता-गौरव किसे कहते हैं ?

साता का अर्थ - आरोग्य एवं शारीरिक सुख है । अतएव आरोग्य, शारीरिक सुख तथा वस्त्र, पात्र, शयनासन आदि सुख के साधनों के मिलने पर अभिमान करना और न मिलने पर उसकी लालसा - इच्छा करना, साता गौरव है ।

८ आराधना और विराधना का क्या अर्थ है ?

किसी भी प्रकार का दोष न लगाते हुए चारित्र का विशुद्ध रूप से पालन करना आराधना है और इसके विपरीत ज्ञानादि आचार का सम्यक् रूप से आराधन न करना, उनका खण्डन करना, उनमे दोष लगाना विराधना है ।

९. संज्ञा किसे कहते हैं ?

कर्मोदय के प्राबल्य से होने वाली अभिलाषा इच्छा, संज्ञा

कहलाती है । आहार, भय, मैथुन और परिग्रह के भेद से चार प्रकार की कही है ।

प्र. १०. विकथा किसे कहते हैं ?

उ. संयम जीवन को दूषित करने वाली विरुद्ध कथा, वि कही जाती है ।

प्र. ११. ध्यान किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ?

उ. छद्मस्थों के अंतर्मुहूर्त काल तक किसी एक वस्तु की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं । किन्तु केव भ के मन (भाव मन) का अभाव होने के कारण योग रूप ध्यान होता है। ध्यान, प्रशस्त और अप्रशस्त रूप प्रकार का होता है । आर्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त है तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान प्रशस्त ध्यान है ।

प्र. १२. क्रिया किसे कहते हैं ? इसके मुख्य कितने भेद है ?

उ. कर्मबन्धन कराने वाली चेष्टा अर्थात् हिंसा प्रधान व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं । मूल क्रियाएं पां विस्तार से क्रिया के २५ भेद माने गये हैं ।

प्र. १३. कायिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उ. काया के द्वारा होने वाली क्रिया कायिकी क्रिया कह है।

प्र. १४. आधिकरणिकी क्रिया क्या है ?

उ. जिसके द्वारा आत्मा नरक आदि दुर्गति का अधि होता है वह दुर्मत्रादि का अनुष्ठान विशेष अथवा घ शस्त्र आदि 'अधिकरण' कहलाता है । अधिकरण लगने वाली क्रिया आधिकरणिकी क्रिया कहलाती है

१५ प्राद्वेषिकी किसे कहते हैं ?
प्रद्वेष का अर्थ है – मत्सर, डाह, ईर्षा । जीव तथा अजीव किसी भी पदार्थ के प्रति द्वेष भाव रखना, प्राद्वेपिकी क्रिया कहलाती है ।

१६ पारितापनिकी क्रिया किसे कहते है ?
ताड़न आदि के द्वारा दिया जाने वाला दुःख 'परितापन' कहलाता है । परितापन से निष्पन्न होने वाली क्रिया, पारितापनिकी क्रिया कहलाती है ।

१७. प्राणातिपातिकी क्रिया क्या है ?
प्राणों का अतिपात – विनाश 'प्राणातिपात' कहलाता है । प्राणातिपात से होने वाली क्रिया प्राणातिपातिकी क्रिया कहलाती है ।

१८ कामगुण किसे कहते है ?
काम का अर्थ है – विषय भोग । काम के साधनो शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श को – कामगुण कहते है ।

१९ ईर्या समिति का क्या अर्थ है ?
युग–परिमाण भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए, जीवों को बचाते हुए यतनापूर्वक गमनागमन करना, ईर्या समिति है ।

२०. भाषा समिति किसे कहते हैं ?
आवश्यकता होने पर भाषा के दोषों का परिहार करते हुए यतना पूर्वक भाषण में प्रवृत्ति करना, फलतः हित, मित, सत्य एवं स्पष्ट वचन कहना भाषा समिति कहलाती है ।

२. परलोकभय - दूसरी जाति वाले प्राणी से डरना, परलोक भय है । जैसे मनुष्य का देव से या तिर्यच आदि से डरना ।

३. आदानभय - अपनी वस्तु की रक्षा के लिए चोर आदि से डरना ।

४. अकस्मात्भय - किसी बाह्य निमित्त के बिना अपने आप ही सशंक हो कर रात्रि आदि में अचानक डरने लगना ।

५. आजीविकाभय - दुर्भिक्ष आदि मे जीवन यात्रा के लिए भोजन आदि की अप्राप्ति के दुर्विकल्प से डरना ।

६. मरणभय - मृत्यु से डरना ।

७. अपयशभय - अपयश की आशंका से डरना ।

प्र. २६. श्रमण धर्म क्या है ?

उ. आध्यात्मिक साधना मे अहर्निश श्रम करने वाले सर्वविरत साधक को 'श्रमण' कहते है । श्रमण के धर्म 'श्रमण-धर्म' कहलाते है । ये दस है - १ क्षमा, २ मुक्ति-निर्लोभता, ३ आर्जव-सरलता, ४ मार्दव-मृदुभाव ५ लाघव-लघुता, हल्कापन ६ सत्य, ७ सयम ८ तप ९ त्याग-आकिंचन्य-परिग्रह न रखना १० ब्रह्मचर्य ।

प्र २७. उपासक प्रतिमा किसे कहते हैं ?

उ उपासक का अर्थ श्रावक होता है और प्रतिमा का अर्थ-प्रतिज्ञा=अभिग्रह है । उपासक की प्रतिमा, उपासक प्रतिमा कहलाती है । ये ग्यारह हैं -

१. दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा,

४ पौषध प्रतिमा, ५ नियम प्रतिमा, ६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ७ सचित्त त्याग प्रतिमा, ८ आरंभ त्याग प्रतिमा, ९ प्रेष्यत्याग प्रतिमा १० उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा, ११ श्रमणभूत प्रतिमा❖।

प्र २८. तेरह क्रिया स्थान कौन-कौन से हैं ?

उ. १ अर्थ क्रिया, २ अनर्थ क्रिया, ३ हिंसा क्रिया, ४ अकस्मात् क्रिया, ५ दृष्टि विपर्यास क्रिया, ६ मृषा क्रिया, ७ अदत्तादान क्रिया, ८ अध्यात्म क्रिया, ९ मान क्रिया, १० मित्र क्रिया, ११ माया क्रिया, १२ लोभ क्रिया, १३ ईर्यापथिकी क्रिया।

प्र. २९. अब्रह्मचर्य के अठारह भेद कौन-कौन से हैं ?

उ देव संबन्धी भोगों का मन, वचन और काया से स्वयं सेवन करना, दूसरों से कराना तथा करते हुए को भला जानना - इस प्रकार नौ भेद वैक्रिय शरीर संबन्धी होते है। मनुष्य तिर्यंच संबन्धी औदारिक भोगों के भी इसी तरह नौ भेद समझना चाहिए । इस तरह अब्रह्मचर्य के कुल १८ भेद होते हैं।

प्र. ३०. असमाधि किसे कहते हैं ?

उ. जिस सत्कार्य के करने से चित्त में शांति हो, आत्मा ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप मोक्ष में अवस्थित रहे, उसे समाधि कहते हैं और जिस कार्य से चित्त मे अप्रशस्त एवं अशांत भाव हो, ज्ञानादि मोक्ष मार्ग से आत्मा भ्रष्ट हो, उसे असमाधि कहते हैं । असमाधि के २० स्थान कहे हैं ।

❖ प्रतिमाओं के विशेष वर्णन के लिए दशाश्रुतस्कंध सूत्र देखें ।

३१. शबल दोष किसे कहते हैं ?
जिन कार्यों के करने से चारित्र की निर्मलता नष्ट हो जाती है, उन्हें शबल दोष कहते हैं । शबल दोष इक्कीस है ।

३२. चौबीस जाति के देव कौन-कौन से हैं ?
असुरकुमार आदि १० भवनपति, भूत यक्ष आदि आठ व्यंतर, सूर्य चन्द्र आदि पांच ज्योतिषी और वैमानिक देव इस प्रकार कुल चौबीस जाति के देव हैं ।

३३. प्राण, भूत, जीव और सत्त्व किसे कहते हैं ?
द्वीन्द्रिय आदि तीन विकलेन्द्रिय जीवो को 'प्राण' कहते है । वनस्पति जीवों को 'भूत', पंचेन्द्रिय प्राणियो को 'जीव' तथा शेष चार स्थावरों को 'सत्त्व' कहा जाता है।

३४. आशातना करने से क्या हानि होती है ?
सम्यग्दर्शन आदि आध्यात्मिक गुणो की प्राप्ति को 'आय' कहते हैं और शातना का अर्थ - खण्डन करना है। गुरुदेव आदि पूज्य पुरुषों का अपमान करने से, आशातना करने से, सम्यग्दर्शन आदि सद्गणो की शातना - खण्डना होती है ।

३५. **'अरहंताणं आसायणाए'** (अर्हतो की आशातना) किसे कहते हैं ?
कोई भी जीव राग-द्वेष से रहित नहीं हो सकता, अतः अर्हत भी राग-द्वेष से मुक्त नहीं है ।' 'अर्हन्त ने सर्वज्ञ होते हुए भी पूर्ण समाधान नही दिया ।' 'इतने कठोर विधान बनाने वाले अर्हन्त दयालु कैसे कहे जा सकते

हैं ?' आदि कहना एवं उनकी आप्तता आदि में सन्देह करना अर्हत आशातना है।

प्र. ३६. सिद्ध आशातना क्या है ?

उ. 'सिद्ध की भी क्या कृतकृत्यता है ?' 'एक स्थान में अनंतकाल तक रुके रहना भी क्या सिद्धि है ?' 'सिद्ध हैं ही नहीं।' जब शरीर ही नहीं है तो फिर उनको सुख किस बात का ? या सिद्धत्व मे क्या सुख है ?' इत्यादि रूप मे अवज्ञा करना सिद्ध आशातना है ।

प्र. ३७. आचार्य आशातना किसे कहते है ?

उ. आचार्य की आज्ञा नहीं मानना, आचार्य को यमपाल जैसा मानना, आचार्य की निंदा करना आदि आचार्य आशातना कहलाती है ।

प्र. ३८. उपाध्याय आशातना क्या है ?

उ. उपाध्याय को शास्त्र के कीड़े, अबहुश्रुत, बाल की खाल निकालने वाले, युगप्रवाह से अपरिचित, चमत्कार विहीन आदि मानना-कहना उपाध्याय आशातना है ।

प्र. ३९. साधु-आशातना कैसे होती है ?

उ. 'साधु होना नपुंसक होना है ।' 'आत्म-साधक स्वार्थी हैं।' 'कमाना नहीं आया तो साधु हो गये' आदि कहने-मानने से साधु की आशातना होती है ।

प्र. ४०. साध्वी-आशातना क्या है ?

उ. 'साध्वियां कलहकारिणी ही होती है ।' 'स्त्री साधुधर्म पाल ही नही सकती ।' 'स्त्रियां अपवित्र हैं अत: साध्वियां भी वैसी हैं' इत्यादि रूप से अवहेलना करना साध्वी की आशातना है।

प्र ४१. श्रावक आशातना किसे कहते हैं ?

उ 'गृहवास मे अंशमात्र धर्म नहीं है, इसलिये श्रावक धर्म आराधक नहीं हो सकता ।' 'संसार के प्रपंच मे श्रावक क्या धर्म पालते होगे' - आदि कहने से श्रावको की अवहेलना होती है, जिसे श्रावक आशातना कहते हैं ।

प्र ४२. श्राविका आशातना से क्या अभिप्राय है ?

उ. 'स्त्रियां कपटी होती हैं अतः श्राविका क्या धर्म पालेगी?' 'धर्मस्थान में इकट्ठी होकर दुनिया भर की निंदा करती है।' 'निठल्लियों को घर मे कार्य नही है सो मुंह बांध कर बैठ जाती है, ' 'श्राविका गृहकार्य मे लगी रहती है, आरंभ मे ही जीवन गुजारती है, बाल बच्चो के मोह में फंसी रहती है उनकी सद्गति कैसे होगी' इत्यादि कहना श्राविकाओं की अवहेलना है, जो त्याज्य है ।

प्र. ४३. देव की आशातना कैसे होती है ?

उ देवताओ को कामगर्दभ कहना, उन्हे आलसी और अकिंचित्कर कहना, देवता मांस खाते हैं, मद्य पीते हैं इत्यादि निंदास्पद सिद्धांतो का प्रचार करना, देवताओ का अपलाप-अवर्णवाद करना, देव आशातना है ।

प्र ४४. इहलोक और परलोक की आशातना क्या है ?

उ स्वजाति का प्राणीवर्ग 'इहलोक' कहा जाता है और विजातीय प्राणी वर्ग परलोक । इहलोक और परलोक की असत्य प्ररूपणा करना, पुनर्जन्म आदि न मानना, नरकादि चार गतियों के सिद्धांत पर विश्वास न रखना आदि इहलोक और परलोक की आशातना है ।

प्र. ४५. 'सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए' से क्या अभिप्राय है ?

उ. देव, मनुष्य, असुर आदि सहित लोक के संबंध में झूठी प्ररूपणा करना 'सदेवमणुआसुरस्स लोगस्स आसायणाए' है । जैसे – यह लोक, देव का बनाया हुआ है, ब्रह्मा-ईश्वर कृत है, सात द्वीप सात समुद्र पर्यन्त ही लोक है आदि ।

प्र. ४६. काल आशातना किसे कहते हैं ?

उ. पाँच समवाय में काल समवाय को नहीं मानना काल की आशातना करना है । वर्तना लक्षण रूप काल है । यदि काल न हो तो द्रव्य में रूपान्तर ही कैसे हो सकता है ऐसे काल को न मानना 'काल आशातना' है । धार्मिक पुरुपार्थ न करते हुए काल को ही कोसना जैसे कि – 'यह पांचवां आरा है हम धर्म करणी कैसे करें' इत्यादि रूप से कहना पर अपनी प्रवृत्ति नहीं सुधारना भी काल आशातना है ।

५. प्रतिज्ञा सूत्र

(णमो चउवीसाए का पाठ)

(निर्ग्रंथ – प्रवचन का पाठ)

णमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाइ-महावीर पज्जवसाणाणं । इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं, णेयाउयं, संसुद्धं, सल्लगत्तणं,

सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, अवितहमविसंधि, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं । इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति । तं धम्मं सद्दहामि, पत्तियामि, रोएमि, फासेमि, पालेमि, अणुपालेमि । तं धम्मं सद्दहंतो, पत्तियंतो, रोयंतो, फासंतो, पालंतो, अणुपालंतो । तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए । १. असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि । २. अबंभं परियाणामि, बंभं उवसंपज्जामि । ३. अकप्पं परियाणामि, कप्पं उवसंपज्जामि । ४. अण्णाणं परियाणामि, णाणं उवसंपज्जामि । ५. अकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि । ६. मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि । ७ अबोहिं परियाणामि, बोहिं उवसंपज्जामि । ८. अमग्गं卐 परियाणामि, मग्गं उवसंपज्जामि ।

जं संभरामि, जं च न संभरामि, जं पडिक्कमामि, जं च न पडिक्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि ।

समणोऽहं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मो, अनियाणो, दिट्ठिसंपन्नो, मायामोस-

卐 कहीं कहीं 'उम्मग्ग' पाठ भी मिलता है ।

विवज्जिओ। अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमिसु जावंत❀ केइ ❖ साहू, रयहरण-गुच्छ❖-[मुहपत्तिय]-पडिग्गहधरा +पंच महव्वय धरा +अट्ठारस-सहस्ससीलंग [रह] धरा+अक्खयायार-चरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ।

मूल शब्द	अर्थ
णमो	नमस्कार हो
चउवीसाए तित्थयराणं	चौबीस तीर्थकरों को
उसभाइ महावीर-पज्जवसाणाणं	ऋषभदेव से लेकर महावीर - स्वामी तक
इणमेव	यही
णिग्गंथं	निर्ग्रन्थों का
पावयणं	प्रवचन (प्रावचन-प्रवचन प्रतिपाद्य जिसमें हो वह अर्थात् धर्म या जिनशासन)
सच्चं	सत्य है
अणुत्तरं	सर्वोत्तम है
केवलियं	केवली (सर्वज्ञ) प्ररूपित अथवा अद्वितीय है
पडिपुण्णं	प्रतिपूर्ण है
णेयाउयं	न्याययुक्त है, मोक्ष ले जाने वाला है
संसुद्धं	पूर्ण शुद्ध है
सल्लगत्तणं	मायादि शल्यो को काटने वाला है
सिद्धिमग्गं	सिद्धि का मार्ग है

पाठान्तर - ❀ जावंति ❖ के वि ❖ गुच्छग + धारा

ुत्तिमग्गं	मुक्ति का मार्ग है
णज्जाणमग्गं	संसार से निकलने का मार्ग है, मोक्ष मार्ग का स्थान है
णव्वाणमग्गं	निर्वाण का मार्ग है, परम शान्ति का कारण है
वितहमविसंधि	तथ्य है, यथार्थ है, अव्यवच्छिन्न है, सदा शाश्वत है (महाविदेह की अपेक्षा)
व्विदुक्खपहीणमग्गं	सब दुःखों के क्षय का मार्ग है ।
त्थं ठिया जीवा	इसमें स्थित हुए जीव
सज्झंति	सिद्ध होते हैं, अनंत गुणों की पूर्ण प्राप्ति आठ कर्मो का क्षय हो जाता है
ुज्झंति	बुद्ध होते हैं अर्थात् मुक्त अवस्था में भी केवलज्ञान केवल दर्शन (बुद्धत्व) बना रहता है
ुच्चंति	मुक्त होते हैं फिर संसार में नही लौटते हैं अर्थात् जन्म मरण का प्रवाह सदैव के लिए रुक जाता है
रिणिव्वायंति	निर्वाण को प्राप्त होते है, परमशीतलीभूत हो जाते हैं, परम सुखी बन जाते हैं
व्वदुक्खाणमंतं करेंति	सभी दुःखों का (शारीरिक और मानसिक) अन्त–क्षय कर देते है
ं धम्मं	उस धर्म की
द्धहामि	श्रद्धा करता हूँ । तर्क अगोचर विषयों तत्त्वो (धर्मास्तिकाय आदि) पर श्रद्धा करता हूँ

पत्तियामि	प्रतीति करता हूँ,युक्ति से समझने योग्य पुण्य पापादि पर प्रतीति करता हूँ
रोएमि	तप चारित्र की अभिलाषा रुचि करता हूँ
फासेमि	धर्म की स्पर्शना करता हूँ अर्थात् उसे आचरण के रूप में स्वीकार करता हूँ
पालेमि	पालन करता हूँ, स्पर्श ही नहीं प्रत्येक स्थिति में धर्म का पालन करता हूँ अर्थात् स्वीकृत आचार की रक्षा करता हूँ
अणुपालेमि	विशेष रूप से निरन्तर पालन करता हूँ। जीवन के हर क्षण में पालन करता हूँ
तं धम्मं	उस धर्म की
सद्दहंतो	श्रद्धा करता हुआ
पत्तियंतो	प्रतीति करता हुआ
रोयंतो	रुचि करता हुआ
फासंतो	स्पर्शना करता हुआ
पालंतो	पालन करता हुआ
अणुपालंतो	विशेष रूप से (निरन्तर) पालन करता हुआ
तस्स धम्मस्स	उस धर्म की
केवलिपण्णत्तस्स	(जो कि) केवली प्रज्ञप्त है
अब्भुट्ठिओमि आराहणाए	आराधना में उपस्थित होता हूँ
असंजमं परियाणामि	असंयम (प्राणातिपातादि) को जानता हूँ एवं त्यागता हूँ (ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्यागता हूँ)

संजमं उवसंपज्जामि	संयम को स्वीकार करता हूँ
अबंभं परियाणामि	अब्रह्मचर्य को जानता हूँ एवं त्यागता हूँ
बंभं उवसंपज्जामि	ब्रह्मचर्य को स्वीकार करता हूँ
अकप्पं परियाणामि	अकल्प्य और अकृत्य को जानता एवं त्यागता हूँ
कप्पं उवसंपज्जामि	कल्प्य और कृत्य को स्वीकार करता हूँ
अण्णाणं परियाणामि	अज्ञान को जानता और त्यागता हूँ
णाणं उवसंपज्जामि	ज्ञान को स्वीकार करता हूँ
अकिरियं परियाणामि	अक्रिया को जानता हूँ एवं त्यागता हूँ
किरियं उवसंपज्जामि	क्रिया को स्वीकार करता हूँ
मिच्छत्तं परियाणामि	मिथ्यात्व को जानता एवं त्यागता हूँ
सम्मत्तं उवसंपज्जामि	सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ
अबोहिं परियाणामि	अबोधि (मिथ्यात्व) को जानता हूँ और त्यागता हूं
बोहिं उवसंपज्जामि	बोधि (सम्यक्त्व) को स्वीकार करता हूँ
अमग्गं (उम्मग्गं) परियाणामि	अमार्ग (उन्मार्ग) को जानता हूँ और त्यागता हूँ
मग्गं उवसंपज्जामि	मार्ग को स्वीकार करता हूँ
जं संभरामि	जो स्मरण करता हूँ
जं च न संभरामि	और जो स्मरण नहीं करता हूँ
जं पडिक्कमामि	जिसका प्रतिक्रमण करता हूँ
जं च न पडिक्कमामि	और जिसका प्रतिक्रमण नही करता हूँ
तस्स सव्वस्स	उन सब
देवसियस्स	दिन सम्बन्धी (यथाकाल प्रतिक्रमण में

	राइयस्स, देवसियस्स पक्खियस्स, चाउम्मासियस्स, संवच्छरियस्स पाठ बोलना चाहिये)
अइयारस्स	अतिचार का
पडिक्कमामि	प्रतिक्रमण करता हूँ
समणोऽहं	मैं श्रमण हूँ (तप संयम में पुरुषार्थ करने वाला हूँ)(यह साधक का आत्म गौरव है जो उच्च संकल्पों का स्मरण कराकर क्रिया रूप में परिणत कराता है)
संजय	संयत-संयमी हूँ (सत्तरह प्रकार के संयम में स्थित हूँ)
विरय	विरत हूँ [अठारह पापों (सावद्ययोगो) से विरत हूँ]
पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मो	प्रतिहत प्रत्याख्यात पाप कर्मा हूँ अर्थात् प्रत्याख्यान के द्वारा आने वाले पाप कर्मो को रोक दिया है
अनियाणो	निदान रहित [आसक्ति रहित]
दिट्ठिसंपन्नो	सम्यग्दृष्टि से युक्त हूँ
मायामोस विवज्जिओ	माया सहित झूठ से सर्वथा रहित हूँ
अड्ढाइज्जेसु दीव समुद्देसु	अढाई द्वीप समुद्रों में
पण्णरस कम्मभूमिसु	पन्द्रह कर्म भूमियो में
जावंत	जितने भी
केइ साहू	कोई साधु हैं
रयहरण गुच्छ (ग) (मुहपत्तिय) पडिग्गहधरा	रजोहरण पूंजणी (मुखवस्त्रिका) और पात्र के धारक हैं

पंच महव्वयधरा	पाँच महाव्रत के धारक है
अट्ठारस सहस्स	अठारह हजार
सीलंग (रह) धरा	शीलाङ्ग (रथ) के धारक है
अक्खयायार चरित्ता	अक्षत परिपूर्ण आचार रूप चारित्र के धारक है
ते सव्वे	उन सबको
सिरसा	शिर से
मणसा	मन से
	(वचन से इस प्रकार उच्चारण पूर्वक)
मत्थएण वंदामि	मस्तक से वन्दना करता हूँ ।

भावार्थ - भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर देवों को नमस्कार करता हूँ ।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, अनुत्तर - सर्वोत्तम है, केवल अद्वितीय है अथवा केवलज्ञानियों से प्ररूपित है, प्रतिपूर्ण है नैयायिक - मोक्ष पहुंचाने वाला है अथवा न्याय से युक्त है, पूर्ण शुद्ध अर्थात् सर्वथा निष्कलंक है, माया आदि शल्यो को नष्ट करने वाला है, सिद्धिमार्ग - पूर्ण हितार्थ रूप सिद्धि की प्राप्ति का उपाय है, मुक्तिमार्ग है, निर्याण-मार्ग-मोक्ष स्थान का मार्ग है, निर्वाण मार्ग-पूर्ण शांति रूप निर्वाण का मार्ग है । अवितथ-मिथ्यात्व रहित है, अविसंधि- विच्छेद रहित अर्थात् सनातन नित्य है तथा पूर्वापर विरोध रहित है, सब दुःखो का क्षय करने का मार्ग है ।

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थिर रहने वाले अर्थात् तदनुसार आचरण करने वाले भव्य जीव सिद्ध होते है, बुद्ध-सर्वज्ञ होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण-पूर्ण आत्म शांति को प्राप्त करते है, समस्त दुःखो का सदा काल के लिए अन्त करते हैं ।

मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप धर्म की श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हूँ रुचि करता हूँ स्पर्शना करता हूं, पालना अर्थात् रक्षा करता हूँ, विशेष रूप से पालना करता हूँ ।

मैं इस जिन धर्म (निर्ग्रंथ प्रवचन) की श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, स्पर्शना-आचरण करता हुआ, पालना करता हुआ, विशेष रूप से पालना करता हुआ उस धर्म की आराधना करने में पूर्ण रूप से अभ्युत्थित-तत्पर हूँ और धर्म की विराधना से पूर्णतया निवृत्त होता हूँ ।

असंयम को ज्ञपरिज्ञा से जान कर प्रत्याख्यान - परिज्ञा से छोड़ता हूँ । अब्रह्मचर्य को जानता और त्यागता हूँ, ब्रह्मचर्य को स्वीकार करता हूँ, अकल्प को जानता हूँ और त्यागता हूँ कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को जानता हूँ और त्यागता हूँ ज्ञान को स्वीकार करता हूँ, अक्रिया को जानता हूँ और त्यागता हूँ और क्रिया को स्वीकार करता हूँ । मिथ्यात्व को जानता हूँ तथा त्यागता हूँ, सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ । अबोधि को जानता हूँ और त्यागता हूँ बोधि को स्वीकार करता हूँ, उन्मार्ग को जानता हूँ और त्यागता हूँ और मार्ग को भावपूर्वक स्वीकार करता हूँ ।

जो दोष मुझे याद हैं और जो याद नही है जिनका प्रतिक्रमण कर चुका हूँ और जिनका प्रतिक्रमण नहीं कर पाया हूँ, उन सब दिवस संबंधी अतिचारों-दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ ।

मैं श्रमण हूँ, संयत-संयमी हूँ, विरत-सावद्य व्यापारो एवं संसार से निवृत्त हूँ, पाप कर्मो को प्रतिहत करने वाला हूँ । एवं पापों का त्याग करने वाला हूँ, निदान शल्य से रहित दृष्टि संपन्न-सम्यग्दर्शन से युक्त हूँ और माया सहित मृषावाद का परिहार करने वाला हूँ ।

ढाई द्वीप और दो समुद्र रूप मनुष्य क्षेत्र मे पन्द्रह कर्म-भूमि क्षेत्रो मे जो भी रजोहरण मुखवस्त्रिका पूंजनी एवं पात्र को धारण करने वाले तथा पांच महाव्रत अठारह हजार शीलांग रूप रथ के धारण करने वाले एवं अक्षत आचार के पालक त्यागी साधु हैं उन सब को शिर से, मन से, मस्तक से वंदना करता हूँ ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. इस पाठ मे सर्वप्रथम चौबीस तीर्थकरो को नमस्कार क्यो किया गया है ?

उ. यह नियम है कि जैसी साधना करनी हो उसी साधना के उपासको का स्मरण किया जाता है । युद्धवीर युद्धवीरो का तो अर्थवीर अर्थवीरो का स्मरण करते हैं । यह धर्मयुद्ध है अतः यहाँ धर्मवीरो का ही स्मरण किया गया है ।

जैन धर्म के ये चौबीस तीर्थकर धर्मसाधना के लिए अनेकानेक भयंकर परीषह सहन करते रहे एवं अन्त मे साधक से सिद्ध पद पर पहुँच कर अजर अमर परमात्मा हो गए । अतः उनका पवित्र स्मरण हम साधको के दुर्बल मन मे उत्साह, बल एवं स्वाभिमान की भावना प्रदीप्त करने वाला है । उनकी स्मृति हमारी आत्मशुद्धि को स्थिर करने वाली है । तीर्थकर हमारे लिए अंधकार मे प्रकाश स्तंभ के समान हैं अतः सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव से महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थकरो को नमस्कार किया गया है ।

प्र २. निर्ग्रन्थ का क्या अर्थ है ?

उ निर्ग्रन्थ का अर्थ है - धन धान्य आदि बाह्य ग्रंथ और

मिथ्यात्व अविरति तथा क्रोध, मान, माया आदि आभ्यंतर ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह से रहित पूर्ण त्यागी संयमी साधु । जो राग-द्वेष की गांठ को सर्वथा अलग कर देता है तोड देता है वही निश्चय में निर्ग्रन्थ है । यहां निर्ग्रन्थ शब्द का यही अर्थ लिया गया है अतः सच्चे निर्ग्रन्थ अर्हन्त और सिद्ध हैं ।

प्र. ३. प्रवचन किसे कहते है ?

उ जिसमें जीवादि पदार्थो का तथा ज्ञानादि रत्नत्रय की साधना का यथार्थ रूप से निरूपण किया गया है वह सामायिक से लेकर बिंदुसार पूर्व तक का आगम साहित्य प्रवचन है ।

प्र. ४. निर्ग्रन्थ-प्रवचन से क्या अभिप्राय है ?

उ. निर्ग्रन्थ प्रवचन का अर्थ है - अर्हन्तों का प्रवचन अर्थात् जिन धर्म । सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक्तप रूप मोक्ष मार्ग ही जिनधर्म है ।

प्र. ५. जैन धर्म की महिमा बताने के लिए कौन से विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं ?

उ. अहिंसा प्रधान जैन धर्म के लिये प्रयुक्त ये विशेषण सर्वथा युक्तियुक्त हैं - **१. सच्चं** (सत्य) - रत्नत्रय रूप जैन धर्म सत्य है । **२. अणुत्तरं** (अनुत्तर) जैनधर्म सर्वोत्तम है । **३. केवलियं** - जैनधर्म के सम्यग्दर्शन आदि तत्त्व अद्वितीय है, सर्वश्रेष्ठ है । यह धर्म केवलज्ञानियों द्वारा कहा हुआ है अतः पूर्ण सत्य है, त्रिकालाबाधित है । **४ पडिपुण्णं** - जैन धर्म एक प्रतिपूर्ण धर्म है । किसी प्रकार भी खंडित नहीं है और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले

सद्‌गुणों से पूर्ण भरा हुआ है । ५. **णेयाउयं** - जंन धर्म नैयायिक है - मोक्ष मे ले जाने वाला है। सम्यग्‌दर्शन आदि जैन धर्म सर्वथा न्याय संगत है । केवल आगमोक्त होने से ही मान्य है, यह बात नही । यह पूर्ण तर्कसिद्ध धर्म है । ६. **सल्लगत्तणं** (शल्य कर्त्तन) - माया, निदान और मिथ्यादर्शनशल्य को काटने वाला यह धर्म है **७. सिद्धिमग्गं ८. मुत्तिमग्गं ९. णिज्जाणमग्गं १० णिव्वाणमग्गं** - सिद्धिमार्ग - आत्म स्वरूप की प्राप्ति का उपाय, मुक्तिमार्ग - कर्मबंधन से मुक्ति का साधन, निर्याण मार्ग - मोक्ष स्थान का मार्ग निर्वाणमार्ग-पूर्ण शांति रूप निवार्ण का मार्ग, - उपाय सम्यग्‌दर्शन आदि रूप जैन धर्म ही है । **११ अवितहं (अवितथ)** - जिन शासन सत्य है असत्य नही **१२. अविसंधि** - जैनधर्म विच्छेद रहित अर्थात् सनातन नित्य है तथा पूर्वापर विरोध रहित है **१३. सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं (सर्वदुःखप्रहीण मार्ग)** - सभी दुःखो की पूर्णतया क्षय कर शाश्वत सुख प्राप्त करने का मार्ग जैन धर्म है ।

प्र ६ ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से क्या आशय है ?

उ ज्ञ-परिज्ञा का अर्थ, हेय आचरण को स्वरूपतः जानना हैं और प्रत्याख्यान परिज्ञा का अर्थ - उसका प्रत्याख्यान करना है - उसको छोड़ना है । प्रत्याख्यान परिज्ञा से पहले ज्ञ-परिज्ञा अत्यंत आवश्यक है । जानकर-समझकर विवेक पूर्वक किया हुआ प्रत्याख्यान ही सुप्रत्याख्यान होता है ।

प्र. ७. इस पाठ मे जानने योग्य और ग्रहण करने योग्य आठ बोल कौन-कौन से है ?

उ. **१. असंयम** - प्राणातिपात आदि **२. अब्रह्मचर्य**-मैथुन वृत्ति **३ अकल्प** - अकृत्य **४ अज्ञान**-मिथ्याज्ञान ५ **अक्रिया** असत्क्रिया ६ **मिथ्यात्व** - अतत्त्वार्थ श्रद्धान ७ **अबोधि** - मिथ्यात्व का कार्य ८ **उन्मार्ग** - अमार्ग - हिंसा आदि ये आठ बोल जानकर छोड़ने योग्य हैं । उपरोक्त आत्म विरोधी प्रतिकूल आचरण का त्याग कर १ संयम **२ ब्रह्मचर्य ३ कल्प-कृत्य ४ सम्यग्ज्ञान ५ सत्क्रिया ७ सम्यग्दर्शन ८ बोधि - सम्यक्त्व का कार्य और ८ सन्मार्ग को स्वीकार करना ।**

प्र. ८. मनुष्य क्षेत्र कहां तक है ?

उ. जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और अर्द्ध पुष्करद्वीप तथा लवण समुद्र एवं कालोदधि समुद्र - यह अढाई द्वीप और दो समुद्र परिमित मानव क्षेत्र है । मनुष्य क्षेत्र में ही श्रमणधर्म की आराधना-साधना हो सकती है आगे के क्षेत्रो मे न मनुष्य है और न श्रमणधर्म की साधना है ।

प्र. ९. अठारह हजार शीलांग कौन-कौन से है ?

उ. शील का अर्थ आचार है । भेदानुभेद की दृष्टि से आचार के अठारह हजार भेद इस प्रकार होते है -

क्षमा, निर्लोभता, सरलता, मृदुता, लाघव, सत्य, संयम तप, त्याग और ब्रह्मचर्य - यह दश प्रकार का श्रमणधर्म है । दशविध श्रमणधर्म के धर्ता मुनि पांच स्थावर, चार त्रस और एक अजीव - इस प्रकार दश की विराधना

नही करते, अतः दशविध श्रमणधर्म को पृथ्वीकाय आदि दश की अविराधना से गुणन करने पर १०×१० = १०० भेद हो जाते हैं । पांच इन्द्रियो के वश मे हो कर ही मानव पृथ्वीकाय आदि दश की विराधना करता है अतः सौ को पांच इन्द्रियों के विजय से गुणन करने पर १००×५ = ५०० भेद होते हैं । आहार, भय, मैथुन और परिग्रह – इन चार संज्ञाओ के निरोध से पांच सौ को चार से गुणन करने से ५००×४ = २००० भेद होते हैं । दो हजार को मन, वचन और काय इन दण्डों के निरोध से तीन गुणा करने पर २०००×३ = ६००० भेद होते है । छह हजार को करना, कराना और अनुमोदन रूप तीन करण से गुणन करने पर ६०००×३ = १८००० अठारह हजार शील के भेद होते है ।

पाँच पदों की वन्दना

पहले पद श्री अर्हत भगवान् जघन्य बीस तीर्थङ्करजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सत्तर देवाधिदेवजी, उनमें वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं । एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौंतीस अतिशय पैंतीस वाणी कर के विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बलवीर्य, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक सिंहासन, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, छत्र धरावे, चंवर बिजावे, पुरुषकार –पराक्रम के

धरणहार, ढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरते हैं, केवलज्ञान, केवलदर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के जाननहार ।

सवैया – नमूं श्री अरहन्त कर्मों का किया अन्त,
हुआ सो केवलवंत, करुणा-भण्डारी हैं ।
अतिशय चौतीस धार, पैंतीस वाणी उच्चार,
समझावे नर-नार, पर उपकारी हैं ।
शरीर सुन्दराकार, सूरज सो झलकार,
गुण है अनन्तसार, दोष परिहारी हैं ।
कहत है तिलोकरिख, मन वच काया करी,
लुलि-लुलि बारम्बार, वन्दना हमारी है ।

ऐसे श्री अर्हत भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी विनय सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अर्हत भगवन् ! मेरे अपराध बारंबार क्षमा करिये । हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ आपका इस भव पर भव, भव-भव मे सदा काल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. अर्हत में कितने गुण होते हैं ? वे गुण कौन-कौनसे हैं

उ. अर्हत में १२ गुण होते हैं –

१. अनन्त ज्ञान – सम्पूर्ण ज्ञान, केवल ज्ञान । यह ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने से प्राप्त होता है ।

२. अनन्त दर्शन – सम्पूर्ण दर्शन, केवल दर्शन । यह दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से प्राप्त होता है ।

३. अनन्त चारित्र – क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात चारित्र। यह मोहनीय कर्म के क्षय होने से प्राप्त होता है ।

४. अनन्त बलवीर्य – अनन्त शक्ति–सामर्थ्य । यह अन्तराय कर्म के क्षय से प्राप्त होता है ।

उपरोक्त चारों गुण चार कर्मो के क्षय से प्राप्त होते है । नीचे बताये गये ८ गुण देव कृत होते हैं । जिन्हें अष्ट महा प्रातिहार्य भी कहते हैं। ये तीर्थकर नाम कर्म के उदय से प्राप्त होते है ।

५. दिव्य ध्वनि – यह ४ कोस तक सुनाई देती है और सभी प्राणियों के लिए उनकी भाषा में परिणमती है ।

६. भामण्डल – सूर्यो से भी अधिक प्रकाश के समान मस्तक के कुछ पीछे चारों ओर प्रकाश का घेराव । जो अन्धकार मे भी दस दिशाओं को प्रकाशित करता है ।

७. स्फटिक सिंहासन – जिस पर समवसरण मे विराजते हैं।

८. अशोक वृक्ष – जो भगवान् से १२ गुणा ऊंचा छाया रहता है ।

९. देव दुन्दुभि – जिसे देवता आकाश मे वजाते हैं ।

१०. कुसुम वृष्टि – देवकृत अचित्त पुष्पो की वर्षा होती है।

११. तीन छत्र – जो भगवान् के ऊपर एक पर एक होते हैं। जो भगवान् का तीन लोक का नाथ होना सूचित करते है।

१२. दो चामर – जिसे देव दोनो ओर बींजते है ।

सुख, ४. वीतरागता, ५. अक्षय स्थिति, ६. अमूर्तिक, ७. अगुरु-लघु, ८. अनन्त आत्म-सामर्थ्य, ये आठ गुण कर के सहित हैं ।

सवैया - सकल करम टाल, वश कर लियो काल,
मुगति में रह्या माल, आत्मा को तारी है ।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव,
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है ।
अचल-अटल रूप, आवे नहीं भव-कूप,
अनूप सरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है
कहत है तिलोकरिख, बताओ ए वास प्रभु ।
सदा ही उगंते सूर, वन्दना हमारी है ॥

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे सिद्ध भगवन् ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये । हाथ जोड मान मोड शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ ! आपका इस भव, परभव, भव-भव में सदाकाल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र १ सिद्ध किसे कहते हैं ? उनमे कितने गुण हैं ? नाम बताइए?

उ. सिद्ध का अर्थ है जिन्होने सम्पूर्ण कार्यो को सिद्ध कर

लिया है । जो राग द्वेष रूप सम्पूर्ण शत्रुओ को जीत कर केवली बनकर, चौदहवे गुणस्थान की भूमिका पार कर सदा के लिए जन्म-मरण, आधि, व्याधि से रहित होकर आत्मस्वरूप में स्थित हैं । जो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के कर्मों से रहित हैं, जो लोक के अग्र भाग में विराजमान हैं, वे सिद्ध हैं । उनमें आठ कर्मो के क्षय से आठ गुण प्रकट होते हैं।

१. **अनन्त ज्ञान** (ज्ञानावरणीय के क्षय से)
२. **अनन्त दर्शन** (दर्शनावरणीय के क्षय से)
३. **अव्याबाध सुख** (वेदनीय के क्षय से)
४. **वीतरागता** (मोहनीय के क्षय से)
५. **अक्षय स्थिति** (आयुष्य के क्षय से)
६. **अमूर्तिक** (नाम के क्षय से)
७. **अगुरुलघुत्व** (गोत्र के क्षय से)
८. **अनन्त आत्म सामर्थ्य** (अन्तराय के क्षय से)

प्र. २. सिद्ध भगवान् के कितने भेद हैं और कौन-कौनसे हैं ?

उ. सिद्ध होने के पश्चात् सभी आत्माएं समान हो जाती हैं। उनमें कोई भेद नहीं रहता किन्तु सिद्धो की सांसारिक अवस्था (पूर्वावस्था) की दृष्टि से उनमें पन्द्रह भेद माने गये हैं -

१. **तीर्थसिद्ध** - साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना के पश्चात् जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की । जैसे - गौतम स्वामी आदि ।

२. **अतीर्थसिद्ध** - चार तीर्थ की स्थापना के पहले और

तीर्थ विच्छेद के बाद जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की । जैसे - मरुदेवी माता ।

३. तीर्थकर सिद्ध - जिन्होंने तीर्थकर की पदवी प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त की । जैसे - भगवान् ऋषभदेव आदि २४ तीर्थकर।

४. अतीर्थकर सिद्ध - जिन्होंने तीर्थकर की पदवी प्राप्त न करके मोक्ष प्राप्त किया । जैसे - गौतम अनगार आदि

५. स्वयं बुद्ध सिद्ध - बिना उपदेश के पूर्व जन्म के संस्कार जागृत होने से जिन्हे ज्ञान हुआ और सिद्ध हुए । जैसे - कपिल केवली आदि ।

६. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध - किसी पदार्थ को देखकर विचार करते - करते बोध प्राप्त हुआ और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया । जैसे - करकण्डू राजा आदि ।

७. बुद्ध बोधित सिद्ध - गुरु के उपदेश से ज्ञानी होकर जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की । जैसे - जम्बू स्वामी आदि ।

८. स्त्रीलिंग सिद्ध - जैसे - चन्दनबाला आदि ।

९. पुरुष लिंग सिद्ध - जैसे - अर्जुन माली आदि ।

१०. नपुंसकलिंग सिद्ध - भगवती सूत्र के प्रमाण से जन्म पुरुष नपुंसक केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हो सकता है । जैसे - गांगेय अनगार आदि ।

११. स्वलिंग सिद्ध - रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि वेष मे जिन्होने मुक्ति पाई । जैसे - गौतम अनगार आदि ।

१२. अन्य लिंग सिद्ध - जैन वेष से अन्य सन्यासी आदि के वेष मे भाव संयम द्वारा केवल ज्ञान उपार्जित

कर वेष परिवर्तन जितना समय न होने पर उसी वेष मे जिन्होने मुक्ति पाई । जैसे – वल्कलचीरी आदि ।

१३. गृहस्थलिंग सिद्ध – गृहस्थ के वेष मे जिन्होंने भाव संयम प्राप्त कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की । जैसे – मरुदेवी माता आदि

१४. एक सिद्ध – एक समय में एक ही जीव मोक्ष मे जावे । जैसे – जम्बू स्वामी आदि

१५. अनेक सिद्ध – एक समय में अनेक जीव मोक्ष मे जावे । एक समय मे उत्कृष्ट १०८ तक मोक्ष मे जा सकते है । जैसे ऋषभ देव स्वामी आदि ।

प्र. ३. सिद्धों के १४ प्रकार कौन से हैं ?

उ. स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुष लिंग सिद्ध, नपुंसक लिंग सिद्ध स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, गृहस्थ लिंग सिद्ध, जघन्य अवगाहना, मध्यम अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक् लोक मे होने वाले सिद्ध तथा समुद्र एवं जलाशय में होने वाले सिद्ध । इनका कथन उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवे अध्ययन की गाथा ५०-५१ में है ।

तीसरे पद श्री आचार्यजी महाराज छत्तीस गुण करके विराजमान । पॉच महाव्रत पाले, पॉच आचार पाले, पॉच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, नव वाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, पॉच समिति, तीन गुप्ति शुद्ध आराधे । ये छत्तीस गुण । आठ सम्पदा – १. आचार सम्पदा, २. श्रुत सम्पदा, ३. शरीर सम्पदा, ४. वचन सम्पदा, ५. वाचना सम्पदा, ६. मति सम्पदा, ७. प्रयोगमति सम्पदा, और ८. संग्रह परिज्ञा सम्पदा सहित हैं ।

सवैया – गुण हैं छत्तीस पूर, धरत धरम ऊर,
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है ।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कंत,
भणिया सब ही सिद्धान्त, वाचणी सुप्यारी है ।
अधिक मधुर वेण, कोई नहीं लोपे केण,
सकल जीवों के सेण, कीरत अपारी है ।
कहत है तिलोकरिख, हितकारी देत सीख,
ऐसे आचाराजजी को वन्दना हमारी है ॥

ऐसे श्री आचार्यजी महाराज न्याय-पक्षी, भद्रिक परिणामी, परमपूज्य, कल्पनीय-अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणो के अनुरागी, सौभागी है । ऐसे श्री आचार्यजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय – आशातना की हो, तो बारम्बार हे आचार्यजी महाराज । मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड मान मोड, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ। आपका इस भव परभव, भव-भव मे सदाकाल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १ आचार्य किसे कहते है ? उनमें कितने गुण होते है ?

उ ज्ञानादि पांच आचार का स्वयं दृढ़ता से पालन करते हैं

और चतुर्विध संघ को दृढ़ता से पालन करवाते हैं
चतुर्विध संघ का पथ प्रदर्शन करते है । जो संघ के
नायक हैं । जो दीपक के तुल्य है । वे आचार्य कहे जा
हैं । आचार्य में ३६ गुण पाए जाते हैं । जिनका वर्ण
पांच महाव्रतादि ऊपर कर दिया है । इसके सिवा
अनेक तरह से भी छत्तीस गुणों का वर्णन किया जाता है
(अ) आचार्य की आठ सम्पदाये हैं, प्रत्येक सम्पदा के
चार-चार भेद इस प्रकार हैं -

(१) आचार सम्पदा - १. संयम की सभी क्रियाओं में
मन, वचन, काया को स्थिरता पूर्वक लगाना २ निरभिमान
३. अप्रतिबद्ध विहार ४. गम्भीर विचार तथा दृढ़ स्वभाव
कम उम्र होने पर भी चंचलता न करना ।

(२) श्रुत सम्पदा - १ बहुश्रुतता २. परिचित श्रुत
अपने नाम की तरह सभी शास्त्र याद हो, उच्चारण शुद्ध
और नित्य स्वाध्यायी हो । ३ विचित्र श्रुतता - अपने
और दूसरे के मत का जानकार हों ४. घोष विशुद्धि
उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों का पूरा ध्यान रखना ।

(३) शरीर सम्पदा - १. गणी के शरीर की लम्बाई
चौड़ाई सुडोल होनी चाहिए (आरोह परिणाह सम्पन्न)
२ अलज्जनीय -काणा अंधा आदि न हो, ३ स्थिर
संहनन-शरीर का संगठन स्थिर हो ४. प्रति पूर्णेन्द्रिय
सभी इन्द्रियां पूरी हो ।

(४) वचन सम्पदा - १. आदेय वचन २ मधुर वचन
३ निष्पक्ष वचन ४. असन्दिग्ध वचन युक्त ।

(५) वाचना सम्पदा – १. विचयोद्देश–किन शिष्यो को कौनसा शास्त्र, कौनसा अध्ययन कैसे पढ़ाना ? इसका ठीक–ठीक निर्देश करना २. विचय वाचना – शिष्य की योग्यतानुसार वाचना देना ३. जितना ग्रहण कर सके उतना पढाना ४. अर्थ की संगति करके पढ़ाना ।

(६) मति सम्पदा – १ अवग्रह २. ईहा ३. अवाय व ४. धारणा सम्पन्न ।

(७) प्रयोग मति सम्पदा – १. अपनी शक्ति को देखकर विवाद करना २. परिषदा ३ क्षेत्र और ४ विषय का पूरा ज्ञान कर वाद (चर्चा) मे प्रवृत्ति करना ।

(८) संग्रह परिज्ञा सम्पदा – १ चातुर्मास योग्य क्षेत्र की जानकारी २. पीठ फलक संथारे वगैरह का ध्यान रखना ३ यथासमय आचारों का दृढ़ता से पालन करना ४ गुरुओ के सम्मान का ध्यान रखना एवं बत्तीस भेद हुए तथा विनय के चार भेद – ३३. आचार, ३४. श्रुत ३५. विक्षेपण, ३६. दोष निर्घातन । ये कुल ३६ गुण हुए ।

(ब) उपरोक्त सम्पदाओं के बत्तीस तथा शिष्य को योग्य बनाने के चार बोल – ३३. आचार से, ३४ श्रुत से ३५ धर्म प्रभावना से ३६. दोष विशुद्धि से । इस प्रकार भी छत्तीस गुण माने गये है ।

(स) ज्ञानाचार के आठ भेद, दर्शनाचार के आठ भेद, चारित्राचार के आठ भेद और तपाचार के बारह भेद कुल ३६ भेद होते है आदि ।

२. ब्रह्मचर्य की नववाड़ कौनसी है ?

उ. १. ब्रह्मचारी स्त्री ❂, पशु, नपुंसक जहां रहते हो वहां न र
२. स्त्रियों की कथा वार्ता न करे ।
३. स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठे । उनके उठ जाने पर भी एक मुहूर्त तक उस आसन पर न बैठे ।
४. स्त्रियों के मनोरम व मनोहर अंगों को न देखे।
५. स्त्रियों के गीत, रुदन आदि न सुने ।
६. पूर्व मे भोगे हुए काम भोगो का स्मरण न करे ।
७. गरिष्ठ भोजन न करे ।
८. रूखा-सूखा भोजन भी अधिक न करे ।
९. शरीर, वस्त्र, उपकरण, आदि की विभूपा, अंजन, मं स्नान (छोटा-बड़ा) न करे ।

इन नव वाड़ों के अतिरिक्त दसवाँ कोट भी है । जिसका व उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवे अध्ययन मे है -

१०. शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, मनोज्ञ पर राग अ अमनोज्ञ पर द्वेष न करे । यह १० वां बोल है ।

प्र. ३. पांच समिति व तीन गुप्ति कौंनसी हें ?

उ. १. ईर्या समिति २. भापा समिति ३. एपणा समिति ४ आद भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, ५ उच्चार प्रस्र खेलसिंघाणजल्लपरिष्ठापनिका समिति ६ मनोगु ७. वचन गुप्ति ८. काया गुप्ति ।

चौथे पद श्री उपाध्यायजी महाराज ग्यारह अंग बा उपांग, चरण सत्तरी, करणसत्तरी इन पच्चीस गुण कर के सहि

❂ स्त्रियाँ ब्रह्मचारी के स्थान पर 'ब्रह्मचारिणी'' तथा स्त्री के स्थान पर 'पुरुप' पढे।

ग्यारह अंग का पाठ अर्थ-सहित सम्पूर्ण जाने, १४ पूर्वो के पाठक और निम्नोक्त बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं, उनके नाम -

ग्यारह अंग सूत्र - १. आचारांग (आयारो) २. सूत्रकृतांग (सूयगडो) ३. स्थानाङ्ग (ठाणं) ४. समवायाङ्ग (समवाओ) ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति (विवाहपण्णत्ती, भगवई) ६. ज्ञाताधर्म-कथाङ्ग (णायाधम्मकहाओ) ७. उपासकदशाङ्ग (उवासगदसाओ) ८. अन्तकृद्दशाङ्ग (अंतगडदसाओ) ९. अणुत्तरौपपातिक दशा (अणुत्तरोववाइयदसाओ) १०. प्रश्नव्याकरण (पण्हावागरणाइं) ११. विपाक सूत्र (विवागसुयं)

बारह उपांग - १२ औपपातिक [उ (ओ) ववाइय] १३. राजप्रश्नीय (रायपसेणियं) १४. जीवाभिगम (जीवाभिगमो) १५. प्रज्ञापना (पण्णवणा) १६. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (जम्बूद्दीव-पण्णत्ती) १७. चन्द्रप्रज्ञप्ति (चंदपण्णत्ती) १८. सूर्यप्रज्ञप्ति (सूरपण्णत्ती) १९. निरयावलिका (णिरयावलियाओ कप्पियाओ) २०. कल्पावतंसिका (कप्पवडंसियाओ) २१. पुष्पिका (पुप्फियाओ) २२. पुष्पचूलिका (पुप्फचूलियाओ) २३. वृष्णिदशा (वण्हीदसाओ)।

चार मूलसूत्र - २४ उत्तराध्ययन (उत्तरज्झयणाइं) २५. दशवैकालिक (दसवेयालियं) २६. नंदीसूत्र (नंदी) २७. अनुयोगद्वार सूत्र (अणुओगदाराइं)।

चार छेद सूत्र - २८. दशाश्रुतस्कन्ध (दसाओ) २९ बृहत्कल्प (कप्पो) ३०. व्यवहार सूत्र (ववहारो) ३१. निशीथ सूत्र (निसीह) ३२. आवश्यक सूत्र (आवस्सयं) । तथा अनेक ग्रन्थों के जानकार, सात नय, चार निक्षेप, निश्चय,

व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार। मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया – पढ़त इग्यारे अंग, करमां सु करे जंग,
पाखंडी को मान-भंग, करण हुशियारी है ।
चवदे पूरब धार, जानत आगम सार,
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है ।
पढ़ावे भविक जन, स्थिर कर देत मन,
तप कर तावे तन, ममता को मारी है ।
कहत है तिलोकरिख, ज्ञान-भानु परतिख,
ऐसे उपाध्यायजी को वन्दना हमारी है ।

ऐसे उपाध्याय जी महाराज, मिथ्यात्वरूप अन्धकार के मेटनहार समकित रूप उद्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर कर, सारए वारए, धारए, इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं । ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे उपाध्यायजी महाराज ! मेरा अपराध क्षमा करें। हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदाकाल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र १. उपाध्याय किसे कहते है ? उनके कितने गुण हैं ?

उ. जो साधु साध्वी को रहस्य ज्ञान सहित शास्त्राध्ययन कराते है, जो पापाचार के प्रति विरक्ति और सदाचार के प्रति अनुरक्ति की शिक्षा प्रदान करते हैं, जो सारए-विस्मृत पाठ का स्मरण कराते है, वारए-पाठ की अशुद्धि का निवारण करते है, धारए-नया पाठ धराने वाले (सिखाने वाले) पारए-स्वयं आगम के पारगामी हैं या स्वयं रहस्यों को धारण करने वाले है । जो भ्रान्ति को दूर कर ज्ञान की ज्योति प्रदान करते हैं, उसे उपाध्याय कहते हैं । ११ अंग, १२ उपांग, १ चरण सत्तरी, १ करण सत्तरी इन २५ गुण सहित हैं ।

अंगसूत्र - हाथ, पांव आदि की तरह मुख्य सूत्र । जैसे - आचारांगादि गणधरकृत १२ अंग ।

उपांगसूत्र - अंगुली आदि उपांगों के समान विवेचक सूत्र । जैसे - अन्य बहुश्रुत पूर्वधर आचार्य कृत औपपातिक आदि १२ उपांग।

चरणसत्तरी - ५ महाव्रत, ४ कषाय निग्रह, ३ ज्ञान, दर्शन चारित्र सम्पन्न, ९ वाड ब्रह्मचर्य, १० यति धर्म, १० वैयावृत्य, १२ तप, १७ संयम, ये कुल ७० भेद ।

करणसत्तरी - ५ इन्द्रिय विजय, ५ समिति, ३ गुप्ति, ४ पिण्ड शुद्धि (आहार, शय्या, वस्त्र, पात्र), ४ अभिग्रह (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) १२ साधु प्रतिमा, १२ भावनाएं, २५ प्रकार से प्रतिलेखन, ये ७० भेद ।

पांचवें पद 'णमो लोए सव्वसाहूणं' - ढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक में सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार करोड़ उत्कृष्ट नव हजार करोड़ जयवन्ता विचरे। पांच महाव्रत पाले, पांच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे करणसच्चे, जोगसच्चे, खमा, विरागया, मनसमाधारणया, वयसमाधारणया, कायसमाधारणया, नाणसम्पन्नया, दंसणसम्पन्नया, चारित्तसम्पन्नया, वेयणअहियासणया, मारणंतिय अहियासणया, ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित हैं। पांच आचार पाले, छह काय की रक्षा करे, सात व्यसन छोड़े आठ मद छोड़े, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकार यति-धर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सतरह भेदे संयम पाले, अठारह पापों को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महामोहनीय कर्म निवारे, तेतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल आहार पानी लेवे, ४७ दोष टाल कर भोगे, बावन अनाचार टाले, बुलाया आवे नहीं, नेतिया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चाले इत्यादि कायक्लेश करे और मोह ममता रहित हैं।

सवैया - आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छह काय, सावद्य न बोले वाय,
बुझाई कषाय लाय, किरिया भण्डारी है।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवंत नाम,
धरम को करे काम, ममता को मारी है।
कहत है तिलोकरिख, करमों को टाले विख
ऐसे मुनिराज जी को वन्दना हमारी है॥

ऐसे मुनिराजजी आपकी दिवस संबंधी अविनय आशातना की हो, तो बारम्बार हे मुनिराज ! मेरा अपराध क्षमा करें । हाथ जोड, मान मोड शीश नमा कर तिक्खुत्तो के पाठ से १००८ बार वन्दना नमस्कार करता हूं ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वदामि ।

आप मांगलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामिन् ! हे नाथ ! आपका इस भव, परभव, भव-भव मे सदाकाल शरण हो ।

प्रश्नोत्तर

प्र १ साधु किसे कहते है ? और उनमे कितने गुण होते हैं ।

उ जो मोक्ष की साधना करते हें, जो पर स्वभाव के निवारक और आत्म स्वभाव के साधक है, जो मुख्य रूप से शुद्धोपयोग मे रहते है, उन्हे साधु कहते हैं । इनमे २७ गुण पाए जाते है, वे निम्न है :- ५ महाव्रत, ६-१० इन्द्रिय दमन, ११-१४ कपाय निवारण, १५ भाव के सच्चे, १६ करण के सच्चे, १७ योग के सच्चे, १८ क्षमावान्, १९ वैराग्यवान, २० मन समाधारणता (वश मे करना), २१ वचन समाधारणता, २२ काय समाधारणता, २३ ज्ञान सम्पन्नता, २४ दर्शन सम्पन्नता, २५ चारित्र सम्पन्नता, २६ वेयण अहियासणया-वेदना को अधिसहन करना, २७ मारणंतिय अहियासणया मारणंतिक कप्ट को भी अधि सहना । सिद्ध को छोड़कर अर्हतादि ४ साधु पद मे ही है । साधु ही अपनी उत्कृप्ट साधना से अर्हतादि पद को प्राप्त करते हैं । ये साधु अढाई द्वीप भरतादि कर्म भूमियो के १५ क्षेत्रो मे ही होते हैं ।

अनन्त चौबीसी जिन नमूं, सिद्ध अनन्ता करोड ।
केवलज्ञानी गणधरा वन्दूं बे कर जोड़ ॥ १ ॥
दोय करोड़ केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।
सहस्त्र युगल कोड़ी नमूं, साधु नमूं निश दीस ॥ २ ॥
धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म ।
ये समर्या पातक झरे, टूटे आठों कर्म ॥ ३ ॥
अरिहंत सिद्ध समरूँ सदा, आचारज उवज्झाय ।
साधु सकल के चरण को, वन्दूं शीश नमाय ॥ ४ ॥
अंगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार ॥ ५ ॥

आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल-गणे य ।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिय सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्म-निहिय निय चित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि * ॥ १३ ॥

मूल शब्द	अर्थ
आयरिय	आचार्य महाराज
उवज्झाए	उपाध्याय महाराज
सीसे	शिष्यों
साहम्मिए	साधर्मिकों

* रागेण व दोसेण व, अहवा अकयन्नुणा पडिनिवेसेणं ।
जं मे किंचि वि भणिअं, तमहं तिविहेण खामेमि ॥

कुल	एक आचार्य का शिष्य समुदाय
गणे	गण समूह पर
जे	जो
मे	मैंने
केइ	कुछ
कसाया	क्रोधादि कपाय (किया हो)
सव्वे	सबको
तिविहेण	तीन योग (मन, वचन, काया) से
खामेमि	खमाता हूं, क्षमा चाहता हूँ ।
सव्वस्स	सभी
समण संघस्स	श्रमण संघ-साधु समुदाय
भगवओ	भगवान् को
अंजलिं	दोनो हाथों को जोड
करिय	कर के
सीसे	शिर पर
सव्वं	सब को
खमावइत्ता	क्षमा याचना करके खमा कर
खमामि	क्षमा करता हू, खमता हूँ
सव्वस्स	सब को
अहयं पि	मैं भी
सव्वस्स	सभी
जीवरासिस्स	जीव राशि से
भावओ	भाव से
धम्म निहियनियचित्तो	धर्म मे चित्त को स्थिर करके
सव्वं	सब को

खमावइत्ता	क्षमा याचना करके
खमामि	क्षमा करता हूँ
सव्वस्स	सभी को
अहयं पि	मैं भी

ढ़ाई द्वीप का पाठ

ढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में तथा बाहर श्रावक-श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, शुभ भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चित्तारे, जीवादि नव पदार्थ जाने, श्रावक के इक्कीस गुण कर के युक्त, एक व्रतधारी जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा में विचरे ऐसे बड़ों को हाथ जोड़ पांव पड़ के क्षमा माँगता हूं । आप क्षमा करें आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी से क्षमा मांगता हूँ ।

चौरासी लाख जीवयोनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य। ऐसे चार गति में चौरासी लाख जीव-योनि के सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीव में से किसी जीव का हलते-चलते, उठते-बैठते, सोते-जागते, हनन किया हो, कराया हो, हनन

प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामणा उपजाई हो तो मन वचन काया कर के अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) 卐 प्रकारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

क्षमापना का पाठ

खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ ॥ १ ॥
एवमहं आलोइय, निंदिय-गरहिय-दुगुंछियं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे-चउव्वीसं ॥ २ ॥

मूल शब्द	अर्थ
खामेमि	खमाता हूं
सव्व जीवे	सब जीवो को
सव्वे जीवा	सभी जीव
खमंतु	क्षमा करें
मे	मुझको
मित्ति	मित्रता
मे	मेरी

卐 जीव के ५६३ भेदो को 'अभिहया वत्तिया' आदि दस विराधना से गुणा करने पर ५६३० भेद होते हैं । फिर इनको राग और द्वेष के साथ दुगुणा करने से ११२६० भेद बनते हैं । फिर इनको मन वचन और काया से तीन गुणा करने पर ३३७८० भेद होते हैं । फिर इनको तीन करण से गुणा करने पर १०१३४० भेद बनते ह । इनको तीन काल से गुणा करने पर ३०४०२० भेद हो जाते है । फिर इसको पंच परमेष्ठी और आत्मा इन छह से गुणा करने पर १८२४१२० प्रकार बनते हैं अत: इस प्रकार मिच्छामि दुक्कड दिया जाता है ।

सव्वभूएसु	सभी प्राणियों से
वेरं	शत्रुता
मज्झं	मेरी
ण	नहीं
केणइ	किसी के साथ
एवं	इस प्रकार
अहं	मैं
आलोइय	आलोचना करके
निंदिय	आत्मसाक्षी से निन्दा करके
गरहिय	गुरु साक्षी से गर्हा करके
दुगुंछिय	जुगुप्सा (ग्लानि-घृणा) करके
सम्मं	सम्यक् प्रकार
तिविहेण	मन वचन काया द्वारा
पडिक्कंतो	पापों से निवृत्त होता हुआ
चउव्वीसं	चौबीस
जिणे	भगवान् को
वंदामि	वन्दना करता हूं

प्रायश्चित्त का पाठ

देवसिय-पायच्छित्त-विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

मूल शब्द	अर्थ
देवसिय	दिवस संबंधी
पायच्छित्त	प्रायश्चित्त की
विसोहणत्थं	विशुद्धि के लिए
करेमि	करता हूं
काउस्सग्गं	कायोत्सर्ग

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, णमुक्कारसहियं, पोरिसियं, सड्ढ पोरिसियं, तिविहंपि, चउव्विहंपि, आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अपनी अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व-समाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ❂।

मूल शब्द	अर्थ
गंठिसहियं	गांठ सहित यानी जब तक गांठ बंधी रखूं तब तक
मुट्ठिसहियं	मुट्ठी सहित यानी जब तक मैं मुट्ठी बंद रखूं तब तक
णमुक्कारसहियं	नमस्कार मंत्र बोलकर सूर्योदय से लेकर एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) तक का त्याग
पोरिसियं	एक पहर का त्याग
सड्ढ पोरिसियं	डेढ पहर का त्याग
अण्णत्थ	इसके सिवाय
अणाभोगेणं	बिना उपयोग के कोई वस्तु सेवन की हो
सहसागारेणं	अकस्मात् जैसे पानी बरसता हो और मुख मे छींटे पड़ जावे या छाछ बिलोते समय मुंह मे छींटे पड़ जावे तो मेरे आगार है ।

❂ स्वयं पच्चक्खाण करना हो, तब 'वोसिरामि' ऐसा बोले और जब दूसरे को पच्चक्खाण कराना हो, 'वोसिरे' ऐसा बोले ।

महत्तरागारेणं	महापुरुषों के आगार से अर्थात् महापुरुष गुरुजन के निमित्त से त्याग को भंग करना पड़े तो इसका मेरे आगार है ।
सव्वसमाहिवत्तियागारेणं	सब प्रकार की शारीरिक मानसिक नीरोगता रहे तब तक अर्थात् शरीर में भयंकर रोग हो जाय तो दवाई आदि का आगार है ।
वोसिरामि	त्याग करता हूं

प्रतिक्रमण का समुच्चय पाठ

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरा वंदना, चौथा प्रतिक्रमण, पांचवां कायोत्सर्ग, छठा प्रत्याख्यान । इन छह आवश्यकों में जानते-अजानते जो कोई अतिचार - दोष लगा हो और पाठ उच्चारण करते काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर ह्रस्व दीर्घ न्यूनाधिक विपरीत कहा हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभयोग का प्रतिक्रमण इन पांच प्रतिक्रमण में से कोई प्रतिक्रमण न किया हो, तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था । ये व्यवहार समकित के पांच लक्षण हैं । इनको मैं धारण करता हूं ।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर और भविष्य काल का पच्चक्खाण । इनमें जो कोई अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

देव अर्हत, गुरु निर्ग्रन्थ, केवली-भाषित दयामय धर्म ये तीन तत्त्व सार, संसार असार, भगवंत महाराज आपका मार्ग सत्य है, सत्य है। सत्य है । थव थुई मंगलं ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण किस पाठ से होता है ?

उ मुख्यतया 'दर्शन सम्यक्त्व' के पाठ से और अठारह पापस्थान के मिथ्यादर्शन शल्य आदि पाठ से होता है ।

प्र. २ अव्रत का प्रतिक्रमण किससे होता है ?

उ इच्छामि ठामि के **पंचण्हमणुव्वयाणं** से पांच अणुव्रतों का तथा अठारह पापस्थान के हिंसा, झूठ, चौरी, मैथुन, परिग्रह के पाठ से होता है । एवं व्रतो के प्रतिज्ञा पाठ से भी अव्रत का प्रतिक्रमण होता है ।

प्र ३. प्रमाद और अशुभ योग का प्रतिक्रमण किन पाठों से होता है ?

उ. मुख्यतया '**इच्छामि ठामि**' के तिण्हं गुत्तीणं आदि पाठ से गुण व्रतो शिक्षाव्रतो के पाठ से, अठारह पाप के कलह आदि पाठ से ।

प्र ४ कषाय का प्रतिक्रमण किन पाठों से होता है ?

उ मुख्यतया 'इच्छामि ठामि' के '**चउण्हं कसायाणं**' के पाठ से अठारह पाप के क्रोध मान माया लोभ इत्यादि पाठ से होता है ।

प्र ५ आगामी काल के प्रत्याख्यान का प्रतिक्रमण कैसे होता है ?

उ. यदि आगामी काल के प्रत्याख्यान श्रद्धा, विनय व शुद्धभाव से धारण न किये हो तो उनका प्रतिक्रमण होता है ।

श्रमण सूत्र के पाठ

शंका - श्रमण नाम साधु का है, इसलिये श्रमण सूत्र साधु को ही पढ़ना उचित है या श्रावक को भी ?

समाधान - साधु का ही नाम 'श्रमण' है ऐसा संकुचित अर्थ शास्त्र सम्मत नहीं है । व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के बीसवें शतक के आठवें उद्देशक मे कहा है -

'**तित्थं पुण चाउव्वण्णाइण्णो समणसंघे तं जहा - समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ**' अर्थात् साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों को श्रमण संघ कहते हैं । यद्यपि व्यवहार में श्रमण, साधु का ही नाम है तथापि भगवान् ने तो चारो तीर्थो को ही श्रमणसंघ के रूप में कहा है ।

शंका - श्रमण सूत्र में साधु के आचार का ही कथन है, इसलिये साधु को ही पढ़ना उचित है, श्रावक के लिए उसका क्या उपयोग है ?

समाधान - श्रावक की अनेक धर्म क्रियाओं मे श्रमणसूत्र के पाठ परम उपयोगी होते हैं । उदाहरण के लिए - १ जब श्रावक पौषधव्रत में या संवर मे निद्रा से निवृत्त होते हैं तब निद्रा में लगे हुए दोषों से निवृत्त होने के लिये श्रमण सूत्र का प्रथम पाठ '**इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए**' कहना चाहिये । निद्रा के दोषों से निवृत्त होने का अन्य कोई पाठ नहीं है ।

२. ग्यारहवीं पडिमाधारी श्रावक साधु की तरह ही गोचरी करने वाले होते है तथा कई स्थानो पर दयाव्रत का पालन करने वाले श्रावक भी गोचरी करते हैं । अन्य श्रावकों के

लिए भिक्षाचर्या तप की श्रद्धा प्ररूपणा में लगे हुए दोषों की निवृत्ति करने के लिए दूसरा पाठ '**पडिक्कमामि गोयरचरियाए**' कहना आवश्यक है ।

३ श्रावक - श्राविका ने सामायिक, पौषधव्रत में मुँहपत्ति तथा वस्त्र, पूंजनी आदि का प्रतिलेखन नहीं किया हो तो उस दोष की निवृत्ति करने के लिए तीसरा पाठ '**पडिक्कमामि चाउकालं सज्झायस्स अकरणयाए**' कहना चाहिये।

४. चौथे पाठ में 'एक बोल से लगाकर तेतीस बोल' तक कहे हैं । वे सब ही ज्ञेय (जानने योग्य) हैं कुछ हेय (छोड़ने-योग्य) और कुछ उपादेय (स्वीकार करने योग्य है) । अतः इन बोलों का ज्ञान भी श्रावकों के लिये आवश्यक है ।

५. पांचवां पाठ '**निर्ग्रन्थ प्रवचन**' (**णमो चउवीसाए**) का है जिसमे जिन प्रवचन (शास्त्र) की एवं जैनधर्म की महिमा है तथा आठ बोलों में हेय-उपादेय का कथन है । वह सभी श्रावको के लिए परमोपयोगी है ।

इस प्रकार श्रमणसूत्र मे एक भी विषय या पाठ ऐसा नही है जो कि श्रावक के लिये उपयोगी न हो ।

शंका - श्रावक, श्रमण सूत्र सहित प्रतिक्रमण करते थे या करते हैं, इसका प्रमाण क्या है ?

समाधान - बारह वर्षो के महादुष्काल से धर्मस्खलित जैनों के पुनरुद्धारक श्रावक श्रेष्ठ श्री लोंकाशाह गुजरात देश के अहमदाबाद शहर मे हुए । उस देश मे अर्थात् गुजरात झालावाड, काठियावाड़, कच्छ आदि देशों में छह कोटि

एवं आठ कोटि वाले सभी श्रावक श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण करते थे एवं अभी करते हैं । सनातन जैन साधुमार्गी समाज के पुनरुद्धारक परम पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के श्रावक श्रमणसूत्र बोलते हैं । बाईस संप्रदाय के मूलाचार्य परम पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के श्रावक श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण करते है और जो श्रमणसूत्र सहित प्रतिक्रमण नहीं करते है, उन्हें भी करना चाहिये ।

प्रतिक्रमण करने की विधि

निरवद्य स्थान में विधि पूर्वक सामायिक करे । यदि कारणवशात् (रेल आदि में) सामायिक न कर सके तो संवर धारण करें । फिर खड़े होकर शासनपति भगवान् महावीर स्वामी को या गुरु महाराज विराजित हों तो उन्हें **गुरु वन्दन सूत्र** (तिक्खुत्तो के पाठ) से तीन बार वन्दना कर के क्षेत्र विशुद्धि के लिये 'चउवीसत्थव' की आज्ञा लें । चउवीसत्थव में **नमस्कार सूत्र** **आलोचना सूत्र** (इच्छाकारेणं का पाठ) और **उत्तरीकरण सूत्र** (तस्सउत्तरी का पाठ) कहकर काउस्सग्ग करें । काउस्सग्ग में दो **चतुर्विंशतिस्तव सूत्र** (लोगस्स) का ध्यान करें । 'णमो अरहंताणं' कहकर काउस्सग्ग पारें। फिर काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोलकर एक चतुर्विंशतिस्तव सूत्र प्रकट बोले । फिर नीचे बैठकर बायां घुटना खड़ा रखकर **प्रणिपात सूत्र** (णमोत्थुणं) का पाठ दो बार बोले । गुरु के सम्मुख या पूर्व-उत्तर दिशा मे मुंह करके गुरु वन्दन सूत्र से तीन बार वन्दन करके प्रतिक्रमण करने की आज्ञा

लेवे । प्रतिक्रमण मे –'**इच्छामि णं भंते**' का पाठ और '**नमस्कार सूत्र**' बोले फिर प्रथम आवश्यक की आज्ञा लेकर खड़े रहकर ।

१. **प्रतिज्ञा सूत्र** (करेमि भंते) **इच्छामि ठामि, उत्तरीकरण सूत्र** (तस्स उत्तरी का पाठ) बोलकर कायोत्सर्ग मुद्रा मे स्थित होकर कायोत्सर्ग करें। कायोत्सर्ग में ९९ अतिचार (आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, बारह व्रतो के अतिचार, छोटी संलेखना) व अठारह पाप का चिंतन करे। सब पाटियो के अन्त मे '**तस्स आलोउं** कहे, '**णमो अरहंताणं**' कहकर काउस्सग्ग पारें । काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोलकर पहला आवश्यक समाप्त करे । दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

२. दूसरे आवश्यक मे एक **चतुर्विशतिस्तव सूत्र** प्रकट कहें। फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

३. तीसरे आवश्यक मे **द्वादशावर्त्त गुरु वन्दन सूत्र** (इच्छामि खमासमणो) का पाठ दो बार बोलें । (खमासमणो की पूरी विधि परिशिष्ट नं २ मे पृष्ठ २०५ पर देखें) फिर चौथे आवश्यक की आज्ञा लेवे।

४ चौथे आवश्यक मे खडे होकर **आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व** और **बारह व्रतों के अतिचार** सहित सम्पूर्ण पाठ कहे फिर पर्यकासन से बैठ कर दोनो हाथ जोड मस्तक पर दसो अगुलियां स्थापन कर बड़ी संलेखना का पाठ बोलकर समुच्चय का पाठ बोले । तत्पश्चात् **अठारह पापस्थानक, पच्चीस मिथ्यात्व, चौदह संमूर्च्छिम स्थान का पाठ** बोले फिर तीन बार वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा लेकर बायां घुटना पृथ्वी पर रख कर और दायां घुटना ऊँचा रखकर दोनो हाथ जोड़कर **नमस्कार सूत्र, प्रतिज्ञा सूत्र** (करेमि भंते का पाठ) **चत्तारि मंगलं का पाठ, इच्छामि**

ठामि, **इच्छाकारेणं** के पाठ कहें फिर **शय्या सूत्र** (इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्जाए), **गोचरचर्या सूत्र** (पडिक्कमामि गोयरचरियाए) **काल प्रतिलेखना सूत्र** (पडिक्कमामि चाउकाल सज्झायस्स), **तेतीस बोल का पाठ कहें** तत्पश्चात् दोनों घुटने खडे रख कर दोनों हाथ जोड़ कर और सिर झुका कर **निर्ग्रंथ प्रवचन** (नमो चउवीसाए) का पाठ बोलते हुए '**अब्भुट्ठिओमि**' शब्द से खडे हो कर पूरा पाठ बोलें । फिर दो बार द्वादशावर्त्त गुरु वन्दन सूत्र का पाठ कहें । पश्चात् भाववंदना की आज्ञा लेकर दोनों घुटने नमाकर घुटनों के ऊपर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक को नीचा नमा कर एक नमस्कार सूत्र कह कर पाँच पदो की वन्दना कहे । फिर पालकी आसन से बैठकर **अनंत चौबीसी आदि दोहे, आयरिय उवज्झाए, ढाई द्वीप, चौरासी लाख जीवयोनि, क्षमापना** का **पाठ व अठारह पापस्थान** कह कर चौथा आवश्यक पूरा करें। पांचवें आवश्यक की आज्ञा लेवें ।

५. पांचवे आवश्यक में '**प्रायश्चित्त का पाठ**' एक नमस्कार **सूत्र, प्रतिज्ञा सूत्र, इच्छामि ठामि** और **उत्तरीकरण सूत्र** बोल कर **चतुर्विंशतिस्तव सूत्र** ❖ का काउस्सग्ग करें। दैवसिक प्रतिक्रमण

❖ आवश्यक के पांचवे भेद कायोत्सर्ग मे अमुक काल तक चेष्टा का निरोध करना यह चतुर्विंशतिस्तव पाठ से जाना जाता है । एक गाथा के एक पाद को एक श्वासोच्छ्वास रूप गिन कर 'चन्देसु णिम्मलयरा' तक का पूरा पाठ बोलने से २५ श्वासोच्छ्वास पूरे हो जाते हैं ।

'कायोत्सर्गे च चन्देसु निम्मलयरेत्यन्तश्चतुर्विंशति स्तवश्चिन्त्य । पारिते च समस्तो भणितव्यः'। – हरिभद्रीयावश्यक वृत्ति ।

प्रवचन सारोद्धार (पूर्व भाग) प्रतिक्रमण द्वार की गाथा नं १८३, १८४, १८५ में कायोत्सर्ग में कितने लोगस्स और श्वासोच्छ्वास का ध्यान

मे ४ लोगस्स का, रात्रिक प्रतिक्रमण मे ४ लोगस्स ❂ का, पाक्षिक

करना यह बताया गया है -

चत्तारि[४] दो[२] दुवालस[१२], वीसं[२०] चत्तालीसं[४०] हुंति उज्जोय ।
देवसिय राइय पक्खिय, चाउम्मासे य वरिसे य ॥१८३॥
पणवीस[२५] अद्धतेरस १२$\frac{१}{२}$ सिलोग पन्नत्तरी[७५] य बोद्धव्वा ।
सयमेग पणवीसं [१२५], बे बावण्णा[२५२] य वरिसम्मि ॥ १८४॥
सायं सयं[१००] गोसद्धं [५०] तिन्नेव[३००] सया हवंति पक्खम्मि ।
पंच[५००] य चाउम्मासे, वरिसे अट्ठोत्तर [१००८] सहस्सा ॥ १८५॥

दैवसिक को ४ लोगस्स का, रात्रिक को २ लोगस्स का, पाक्षिक को १२ लोगस्स का, चातुर्मासिक को २० लोगस्स का एवं सांवत्सरिक को ४० लोगस्स एव एक नमस्कार सूत्र का काउस्सग्ग करना चाहिये ॥ १८३॥

(एक लोगस्स **'चन्देसु णिम्मलयरा'** तक बोलने से ६$\frac{१}{४}$ गाथा प्रमाण होता है अतः दूसरी गाथा मे गाथाओ की सख्या बतायी गई है ।)

(एक गाथा मे चार श्वासोच्छ्वास होने से एक लोगस्स मे २५ श्वासोच्छ्वास होते हैं ।)

- दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक को क्रमशः २५, १२$\frac{१}{२}$, ७५, १२५, २५२ गाथा प्रमाण ध्यान करना चाहिये ॥ १८४॥

- दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक को क्रमशः १००, ५०, ३००, ५००, १००८ श्वासोच्छ्वास का ध्यान करना चाहिये ॥ १८५॥

संवत्सरी को कायोत्सर्ग मे ४० लोगस्स और १ नमस्कार सूत्र का ध्यान करने से १००८ श्वासोच्छ्वास प्रमाण होता है ।

❂ ऊपर गाथा न १८३ मे यद्यपि रात्रिक प्रतिक्रमण मे दो लोगस्स के कायोत्सर्ग का ही विधान है तथापि आजकल रात्रिक प्रतिक्रमण मे ४ लोगस्स का कायोत्सर्ग किया जाता है, क्योकि इस गाथा की टीका मे बताया गया है

प्रतिक्रमण मे १२ लोगस्स का, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण मे २० लोगस्स का एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में ४० लोगस्स तथा एक नमस्कार सूत्र का कायोत्सर्ग करना चाहिए। **'णमो अरहंताणं'** कह कर काउस्सग्ग पारे । काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोल कर एक लोगस्स प्रकट कहकर दो बार **द्वादशावर्त्त गुरु वन्दन सूत्र** बोलें । फिर छठे आवश्यक की आज्ञा लेवें ।

६ छठे आवश्यक में खड़े होकर साधुजी महाराज से अपनी शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करें । यदि साधुजी महाराज न हों तो वड़े श्रावक जी से पच्चक्खाण करें । यदि वे भी न हों तो फिर स्वयमेव **'गंठिसहियं मुट्ठिसहियं'** का पाठ बायां घुटना खड़ा करके बोलकर पच्चक्खाण करें । **'प्रतिक्रमण का सम्मुच्चय पाठ'** बोलकर दो बार **प्रणिपात सूत्र** कहें । फिर वन्दना करके अपने स्वधर्मी भाइयों को खमावें । फिर स्वाध्याय चौबीसी और स्तवन आदि के द्वारा आत्म-गुणों में वृद्धि करें ।

नोट - चातुर्मासी व संवत्सरी के दिन दो प्रतिक्रमण किये जाते हैं (ज्ञाता सूत्र अध्ययन ५)। प्रथम दैवसिक प्रतिक्रमण चार आवश्यक तक ही किया जाता है बाद में चातुर्मासिक एवं सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की आज्ञा लेकर छहों आवश्यक (चउवीसत्थव को छोड़ कर) किये जाते हैं।

कि यद्यपि रात्रिक प्रतिक्रमण मे दो लोगस्स का कायोत्सर्ग तथा दो लोगस्स जितना तप रूप चिन्तन करने का वर्णन है तथापि प्रत्येक साधक से तप रूप चिंतन करना संभव नहीं होने से पूर्वाचार्यो ने दो लोगस्स का कायोत्सर्ग + दो लोगस्स (तप रूप चिंतन के स्थान पर)=४ लोगस्स के कायोत्सर्ग का विधान निर्धारित किया है।

परिशिष्ट - १

श्रमण सूत्र (निद्रादोष निवृत्ति आदि पाठ) जिनको याद न हों वे प्रतिक्रमण इस प्रकार कर सकते हैं ।

चउवीसत्थव करने के बाद गुरु के सम्मुख या पूर्व उत्तर-दिशा मे मुँह करके 'गुरु वन्दन सूत्र' से तीन बार वन्दन करके प्रतिक्रमण करने की आज्ञा लेवे । प्रतिक्रमण मे **इच्छामि णं भंते** का पाठ और नमस्कार सूत्र बोले फिर प्रथम आवश्यक की आज्ञा लेकर खड़े रह कर

१. प्रतिज्ञा सूत्र (करेमि भंते), **इच्छामि ठामि, उत्तरीकरण सूत्र** (तस्स उत्तरी का पाठ) बोलकर कायोत्सर्ग मुद्रा मे स्थित होकर कायोत्सर्ग करें । कायोत्सर्ग मे ९९ अतिचार (आगमे तिविहे, **दर्शन सम्यक्त्व, बारह व्रतों के अतिचार, छोटी** [illegible]), अठारह पाप का चिन्तन करे। सब पाटियो के अन्त मे '**तस्स आलोउं**' कहे, '**णमो अरहंताणं**' कहकर काउस्सग्ग पारें । काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोलकर पहला आवश्यक समाप्त करे । दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेवें ।

२ दूसरे आवश्यक मे एक चतुर्विंशतिस्तव सूत्र प्रकट कहे । फिर तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

३ तीसरे आवश्यक मे द्वादशावर्त गुरु वन्दन सूत्र (इच्छामि खमासमणो) का पाठ दो बार बोले । (खमासमणो की पूरी विधि परिशिष्ट नं २ मे पृष्ठ २०५ पर देखे ।) फिर चोथे आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

४. 'श्रावक सूत्र' करने वाले खड़े होकर ९९ अतिचार की पाटियां – (आगमे तिविहे, दर्शन सम्यक्त्व, बारह व्रतों के अतिचार छोटी संलेखना) व अठारह पाप जिनका काउस्सग्ग में चिन्तन किया था उन्हें प्रकट कहें फिर **'तस्स सव्वस्स'** का पाठ बोल कर श्रावक सूत्र की आज्ञा ले और दाहिना घुटना खड़ा रख कर बैठे। फिर **एक नमस्कार सूत्र, प्रतिज्ञा सूत्र, चत्तारि मंगलं, इच्छामि, ठामि का पाठ इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसण समकित** और **बारह व्रतों** के अतिचार सहित सम्पूर्ण पाठ कहें। तत्पश्चात् पालखी आसन से बैठकर **बड़ी संलेखना** का पाठ कहे। फिर खड़े हो कर **'तस्स धम्मस्स'** का पाठ कह कर दो बार **द्वादशावर्त सूत्र** कहें।

पश्चात् दोनों घुटने नमा कर घुटनों के ऊपर दोनो हाथ जोड कर मस्तक को नीचा नमाकर एक नमस्कार-सूत्र कहकर **पांच पदों की वन्दना** कहे। फिर नीचे बैठकर **अनन्त चौबीसी** आदि दोहे, **आयरिय उवज्झाए, ढाई द्वीप, चौरासी लाख जीवयोनि, क्षमापना का पाठ** व **अठारह पापस्थान** कहकर चौथा आवश्यक पूरा करें। पांचवें आवश्यक की आज्ञा लेवें।

५. पांचवें आवश्यक में **प्रायश्चित्त का पाठ,** एक **नमस्कार सूत्र, प्रतिज्ञा सूत्र, इच्छामि ठामि** और **उत्तरीकरण सूत्र** बोल कर **चतुर्विंशतिस्तव सूत्र** ❂ का काउस्सग्ग करें। **'णमो अरहंताणं'** कह कर काउस्सग्ग पारे। काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ बोलकर ...

❂ पृष्ठ २००-२०१ पर टिप्पण में इसका विस्तृत विवरण देखें।

लोगस्स प्रकट कहकर दो बार **द्वादशावर्त गुरु वन्दन सूत्र** बोले । फिर छठे आवश्यक की आज्ञा लेवें ।

६. छठे आवश्यक में खड़े होकर साधुजी महाराज से अपनी शक्ति अनुसार पच्चक्खाण करें । यदि साधुजी महाराज न हों तो बड़े श्रावकजी से पच्चक्खाण करें । यदि वे भी न हो तो फिर स्वयमेव **'गंठिसहियं मुट्ठिसहियं'** का पाठ बोलकर पच्चक्खाण करें । प्रतिक्रमण का समुच्चय पाठ' बोलकर दो बार प्रणिपात सूत्र कहे । फिर वन्दना करके अपने स्वधर्मी भाइयो को खमावे । फिर स्वाध्याय चौवीसी और स्तवन आदि के द्वारा आत्म-गुणों में वृद्धि करें ।

परिशिष्ट नं. २

द्वादशावर्त्त - गुरु वन्दन सूत्र (खमासमणो का पाठ) की बारह आवर्त्त सहित पच्चीस आवश्यक की विधि

गुरु महाराज को वन्दन करने के लिये तथा उनके प्रति हुई आशातना की क्षमा याचना के लिये द्वादशावर्त्त गुरु वन्दन सूत्र बोला जाता है ।

इसका दूसरा नाम कृतिकर्म भी है । जिसका वर्णन समवायांग सूत्र के बारहवे समवाय मे है । इसमे बारह आवर्त्तन युक्त पच्चीस आवश्यक होते हैं । गाथा इस प्रकार है -

दुओणयं जहाजायं, किइकम्मं बारसावयं ।
चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एग णिक्खमणं ॥

अर्थ – दो अवनत (झुकना), एक यथाजात, बारह आवर्त, चार मस्तक, तीन गुप्तियाँ, दो प्रवेश, एक निष्क्रमण, इस प्रकार खमासमणो के ये पच्चीस आवश्यक (प्रकार) होते हैं । पच्चीस आवश्यक युक्त विधि इस प्रकार है –

खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ प्रारम्भ करें । '**अणुजाणह मे मिउग्गहं**' शब्द आवे उस समय कुछ आगे झुककर मस्तक नमाना (यह पहला अवनत हुआ) चाहिये फिर '**निसीहि**' शब्द बोलते हुए उत्कुटुक (यथाजात) आसन से बैठें । (यह गुरु महाराज के अवग्रह मे पहला प्रवेश हुआ ।) दोनो कोहनियों को घुटने के बीच मे रखे, अंजलि-बद्ध दोनों हाथ मस्तक पर रख कर सिर झुकाते हुए निम्नानुसार आवर्त्तन 卐 करें । दोनों हाथों से सिरसावर्त्त करने को आवर्तन कहते हैं । '**अ**' बोलकर अंजलि को दाये हाथ की तरफ से मस्तक की तरफ घुमाकर बायें हाथ की तरफ लावे बाद में मस्तक पर अंजलि लगाते हुए '**हो**' ऐसा बोले । इस प्रकार प्रथम आवर्तन हुआ । इस प्रकार अन्य आवर्त्तन भी करे । प्रथम के तीन आवर्त्तन '**अहो**' '**कायं**' '**काय**' इस प्रकार दो दो अक्षरो का उच्चारण करने से होता है । इसके बाद '**संफासं**' बोलते हुए गुरु चरणों के स्पर्श के प्रतीक के रूप मे दोनों हाथों से या मस्तक से जमीन का स्पर्श करना चाहिये । (यह '**चउसिरं**' मे से पहला शिर हुआ) पश्चात् दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगाते हुए '**खमणिज्जो**' से लेकर

卐 पूज्य श्री घासीलालजी म सा ने भी आवश्यक की टीका मे आवर्त्तन की यही विधि दी है ।

'दिवसो वइक्कंतो' तक का पाठ बोले । तत्पश्चात् **'ज' 'त्ता' 'भे', 'ज' 'व' 'णि', 'ज्जं' 'च' 'भे'** इस प्रकार तीन-तीन अक्षरो का उच्चारण करते हुए तीन आवर्त्तन करे । उसके बाद 'खामेमि खमासमणो' बोलते हुए गुरु चरणो के स्पर्श के प्रतीक के रूप मे दोनो हाथों से या मस्तक से जमीन का स्पर्श करना चाहिए (यह द्वितीय शिर हुआ)। इसके बाद दोनों हाथो को जोडकर मस्तक पर लगाकर **'खामेमि'** से **'वइक्कमं'** तक पाठ बोलें और **'आवस्सियाए पडिक्कमामि'** बोलता हुआ खडा होवें। (यह एक निष्क्रमण हुआ) और शेष पाठ (**पडिक्कमामि' से 'अप्पाणं वोसिरामि'** तक) पूरा करें। (इस प्रकार प्रथम खमासमणो मे एक अवनत, एक प्रवेश, यथाजात छह आवर्त्तन, दो शिर, एक निष्क्रमण और तीन गुप्तिया हुई') इसी प्रकार दूसरी बार **'इच्छामि खमासमणो'** की विधि करनी चाहिये किन्तु इसमे **'आवस्सियाए पडिक्कमामि'** ये दस अक्षर नही कहे तथा यहां पर खड़े न होकर बैठे-बैठे गुरु के अवग्रह मे ही पूरा पाठ समाप्त करें। (इस प्रकार दूसरे 'खमासमणो मे एक अवनत, एक प्रवेश, छह आवर्त्तन, दो शिर होते है तथा 'यथाजात' व तीन गुप्तियां दोनों खमासमणो मे समुच्चय होती हैं । दोनो खमासमणो मे मिलाकर ये पच्चीस आवश्यक होते हैं ।)

आवश्यक निर्युक्ति मे इस विपय को पूर्ण स्पप्ट किया गया है और कहा गया है कि पच्चीस आवश्यक से परिशुद्ध वन्दनकर्त्ता शीघ्र ही परिनिर्वाण पाप्त करता है या वेमानिक देव होता है।

टिप्पण - इच्छामि खमासमणो के पाठ मे - देवसिक

प्रतिक्रमण में '**दिवसो वइक्कंतो**', '**देवसियं वइक्कमं**', '**देवसियाए आसायणाए**', '**देवसिओ अइयारो**' बोलना चाहिए । रात्रिक प्रतिक्रमण में क्रमशः '**राइ वइक्कंता**', '**राइयं वइक्कमं**' '**राइयाए आसायणाए**', '**राइओ अइयारो**' बोलना चाहिए । पाक्षिक प्रतिक्रमण में '**दिवसो पक्खो वइक्कंतो**', '**देवसियं पक्खियं वइक्कमं**', '**देवसियाए पक्खियाए आसायणाए**' '**देवसिओ पक्खिओ अइयारो**' पाठ बोलना चाहिये । चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में '**चाउम्मासो वइक्कंतो**' '**चाउम्मासियं वइक्कमं**', **चाउम्मासियाए आसायणाए**', '**चाउम्मासिओ अइयारो**' पाठ बोलना चाहिए । सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में '**संवच्छरो वइक्कंतो**', '**संवच्छरियं वइक्कमं**', '**संवच्छरियाए आसायणाए**' '**संवच्छरिओ अइयारो**' पाठ बोलना चाहिये ।

✳ आवश्यक सूत्र समाप्त ✳

कपड़ों आदि की प्रतिलेखना करनी होती है अन्यथा अतिचार लगता है । प्रमार्जन-जीवादि दिखने पर उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न हो, इस प्रकार यतना पूर्वक हलके हाथ से पूंजनी या रजोहरण से एकान्त सुरक्षित स्थान में ले जाकर छोडना प्रमार्जन कहलाता है । रात्रि मे तथा दिन में प्रकाश रहित स्थान में विधि पूर्वक पूंजना आवश्यक है । नही पूंजने पर अतिचार लगता है ।

प्र. ११ प्रतिलेखन या प्रमार्जन किस क्रम से करना चाहिये ?

उ. पहले मुखवस्त्रिका फिर पूंजनी, वस्त्र, संस्तारक, पौषधशाला,परठने की भूमि और गोचरी के पात्रादि का, इस क्रम से करना चाहिये ।

प्र १२. क्या पूंजने और प्रतिलेखन करने पर भी अतिचार लगता है ?

उ. विधि व यतना पूर्वक नहीं करने से अतिचार लगता है ।

प्र. १३. पौषध के कितने अतिचार हैं ?

उ पौषध के ५ अतिचार है ।

१२. अतिथि संविभाग व्रत

बारहवाँ अतिथि-संविभाग व्रत-समणे णिग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइम-वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पाडिहारिय पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा-प्ररूपणा तो है, साधु-

मूल शब्द	अर्थ
मेहुणाओ वेरमणं	मैथुन (अब्रह्मचर्य) का त्याग
सदार	अपनी विवाहिता स्त्री मे
(स्त्री के लिए सभत्तार)	(अपने विवाहित पति में)
सन्तोसिए	सन्तोप करता (करती) हूँ
अवसेसं	अन्य स्त्रियो (पुरुषों) से
मेहुणविहिं	मैथुन-सेवन का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता (करती) हूं
एगविहं एगविहेणं	एक करण एक योग से (मैथुन-सेव
न करेमि	नहीं करूंगा
कायसा	काया से
इत्तरियपरिग्गहियागमणे	इत्वर परिगृहीता (अल्प वय व स्वस्त्री) से गमन किया हो ।
अपरिग्गहिया गमणे	अपरिगृहीता (सगाई की हुई स्वस्त्री) गमन किया हो
अनंगकीडा	अनंग क्रीड़ा की हो,
पर-विवाह-करणे	पराये का विवाह नाता कराया हो
कामभोगतिव्वाभिलासे	काम भोग की तीव्र अभिलाषा की ह

प्रश्नोत्तर

प्र १. स्वस्त्री सन्तोष कितने प्रकार का होता है ?

उ. नाना प्रकार से हो सकता है । जैसे -एक विवाह उपरा अन्य से विवाह नहीं करूँगा । वर्तमान स्त्री के स्वर्गव हो जाने पर इतने वर्ष बीत जाने पर अन्य विवाह न

करूँगा । इतने वर्ष हो जाने पर पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा । अमुक तिथियों, पर्वों पर या श्रावण भाद्रपद मास मे ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा ।

प्र २. "इत्वरपरिगृहीतागमन" का क्या अर्थ है ?

उ. अपनी विवाहिता अल्प वय वाली–छोटी उम्र की स्त्री से गमन करना इत्वरपरिगृहीतागमन कहलाता है ।

प्र. ३ 'अपरिगृहीतागमन' अतिचार क्या है ?

उ. स्वयं के साथ सगाई की हुई है परन्तु पंचो की तथा माता पिता की एवं संरक्षकों की साक्षी से विवाह नही हुआ हो उसके साथ मैथुन सेवन करने से अपरिगृहीतागमन अतिचार लगता है ।

प्र. ४. "अनंगक्रीडा" क्या है ?

उ काम सेवन के जो प्राकृतिक अंग हैं उनके सिवाय अन्य अंगों से जो कि काम सेवन के लिए अंग नही हैं, क्रीड़ा करना अनंगक्रीडा है । हस्त मैथुन का समावेश भी इसी अतिचार मे होता है । स्व स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों के साथ मैथुन क्रिया वर्ज कर अनुराग से उनका आलिंगन आदि करने वाले के भी व्रत मलिन होता है । इसलिए वह भी अतिचार माना गया है ।

प्र. ५. "परविवाहकरणे" की व्याख्या कीजिये ?

उ. अपना और अपनी संतान के सिवाय अन्य का विवाह कराना परविवाहकरण अतिचार है । स्वदारा संतोषी श्रावक को दूसरों का विवाह आदि कर उन्हे मैथुन में

लगाना निष्प्रयोजन है अतः दूसरे का विवाह करने के लिए उद्यत होने में यह अतिचार है ।

प्र. ६. "कामभोग तीव्राभिलाप" अतिचार से व्रत दूषित कैसे होता है ?

उ. पांच इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्त होना कामभोगतीव्राभिलाष नामक अतिचार है । यह अतिचार भी अपनी ही परिणीता स्त्री से संबन्ध रखता है। जो वाजीकरण आदि प्रयोग से अधिक कामवासना उत्पन्न करे और वात्सायन के चौरासी आसनादि करके काम में तीव्रता लावे तो उसे कामभोग तीव्राभिलाष नामक यह अतिचार लगता है और इससे व्रत दूषित होता है ।

प्र. ७. ब्रह्मचर्य पालन के लिए किस प्रकार चिन्तन करना चाहिए?

उ. ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ तप है । ब्रह्मचारी को देवता भी नमस्कार करते हैं । काम भोग किंपाक फल और आशीविष के समान घातक है। ब्रह्मचर्य के अपालक रावण, जिनरक्षित, सूर्यकान्ता आदि की कैसी दुर्गति हुई ? ब्रह्मचर्य के पालक जम्बू, मल्लिनाथ, राजीमती आदि का जीवन कैसा उज्ज्वल व आराधनीय बना आदि चिन्तन करना।

प्र. ८. ब्रह्मचर्य में विकार उत्पन्न करने वाले लोक प्रचलित साधन कौन-कौन से हैं ?

उ. सिनेमा, अश्लील साहित्य, चित्र, नाटक, उपन्यास आदि।

प्र. ९. ब्रह्मचर्य की आराधना के लिए क्या उपाय करना चाहिये?

उ. ब्रह्मचर्य की मर्यादा, सत्साहित्य का अध्ययन, सन्त मुनिराजों की संगति, ब्रह्मचर्य की नववाड़ पालन और

बत्तीस उपमा का चिन्तन करना चाहिये । कुसंगति और व्यसनों से दूर रहना चाहिये ।

१०. ब्रह्मचर्य पालन से क्या लाभ हैं ?
शरीर नीरोग, हृदय बलवान्, इन्द्रियां सतेज, बुद्धि तीक्ष्ण और चित्त स्वस्थ रहता है । अन्तरंग लाभ भी महान् हैं - संसार परिमित होता है यावत् केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

५ अपरिग्रह अणुव्रत

पांचवां अणुव्रत - थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं - क्षेत्र वास्तु का यथापरिमाण, हिरण्य-सुवर्ण का यथापरिमाण, धन-धान्य का यथापरिमाण, द्विपद-चतुष्पद का यथापरिमाण, कुप्य का यथापरिमाण एवं जो परिमाण किया है उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण जावज्जीवाए, एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं पांचवां व्रत स्थूलपरिग्रह विरमण के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोऊं- खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइ-क्कमे, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पय-प्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
परिग्गहाओ	परिग्रह (संग्रह तथा मूर्च्छा) से
क्षेत्र	खुली भूमि (खेत आदि)
वास्तु	ढकी भूमि (घर आदि)
हिरण्य-सुवर्ण	चांदी-सोना (मणि, मोती आदि) (आभूषण, पाट, गिन्नी आदि)
द्विपद	दो पैर वाले (मनुष्य, पक्षी आदि)
चतुष्पद	चार पैर वाले (गाय, भैंस आदि) (दु या बैलादि वाहन योग्य)
धन	रोकड़ पूंजी (मुद्रा, हुंडी, बैंक ज आदि)
धान्य	गेहूं, जौ आदि
कुप्य	सोना, चांदी से भिन्न सामग्री (घर व सारा विस्तार)
खेत-वत्थुप्पमाणाइक्कमे	क्षेत्र-वास्तु के परिमाण का अतिक्रम किया हो,
हिरण्यसुवण्ण-प्पमाणाइक्कमे	हिरण्य-सुवर्ण के परिमाण का अतिक्रमण किया हो,
धणधण्ण-प्पमाणाइक्कमे	धन-धान्य के परिमाण का अतिक्रमण किया हो
दुपयचउप्पय-प्पमाणाइक्कमे	द्विपद-चतुष्पद के परिमाण का अतिक्रमण किया हो
कुवियप्पमाणाइक्कमे	कुप्य के परिमाण का अतिक्रम किया हो

प्रश्नोत्तर

१. स्थूल परिग्रह विरमण कितने प्रकार का होता है ?
तीन प्रकार का- १. जितना परिग्रह वर्तमान में स्वयं के पास है, उससे डेढे दूने से अधिक परिग्रह नहीं रखूँगा । यदि उससे अधिक प्राप्त हुआ तो मैं ग्रहण नहीं करूंगा या धर्मादि में खर्च कर दूंगा । यह जघन्य प्रकार का स्थूल परिग्रह विरमण है। २. जितना पास है उससे अधिक विरमण करना मध्यम प्रकार का विरमण है । ३. जितना पास है उससे भी घटाकर विरमण करना उत्तम प्रकार का विरमण है ।

२. क्षेत्र आदि का परिमाण कैसे किया जाता है ?
"मैं धान्यादि के इतने से अधिक खेत, इतने से अधिक गोचर भूमि, इतने से अधिक क्रीडांगन आदि खुली भूमि नहीं रखूंगा। इतने तोले से अधिक सोना, चांदी, मणि, रत्नादि नहीं रखूंगा । इतने से अधिक सेवक, दुधारू पशु आदि नहीं रखूंगा आदि आदि ।

३. क्षेत्रादि के परिमाण का उल्लंघन कैसे होता है ?
अपने खेत के पास अन्य खेत मिलने पर दोनों खेतों की एक बाड़ लगाकर एक खेत गिनना । दस घर और दस खेत रखे थे तो आवश्यकता होने पर दो चार खेत घटाकर दो चार घर बढ़ा लेना । दस खेत से अधिक मिलने पर उन्हें दूसरों के नाम करके भी अधिकार अपना रखना आदि ।

प्र. ४. परिग्रह पाप का मूल है, कैसे ?

उ. "इच्छा हु आगाससमा अणंतिया" इच्छा आकाश समान अनन्त है । ज्यों -ज्यो लाभ होता है, लोभ ब जाता है। सभी जीवो के लिए परिग्रह से बढ़कर व वन्धन नहीं है । यह महान् अशान्ति का कारण है इससे कलह, हिंसा, वेईमानी आदि का प्रादुर्भाव होता

प्र. ५. अपरिग्रह व्रत का पालन करने से क्या लाभ है ?

उ. तृष्णा जन्य संकल्प विकल्प से मुक्ति मिलती है वर्तमान में विद्यमान धनादि में आसक्ति मन्द होती है अभाव मे सन्तोष रहता है । निद्रा सुख से आती आदि अनेक लाभ हैं ।

प्र. ६. परिग्रह कम करने के लिए किस प्रकार का चिन्तन क चाहिए ?

उ. परिग्रह पाप का कारण है अतः सम्पूर्ण अपरिग्रही व वनूंगा ? यह मनोरथ चिन्तन करना । परिग्रह में आस दुर्योधन, कोणिक आदि तथा परिग्रह त्यागी भरत चक्रव धन्ना मुनि, अर्हन्नक आदि के चरित्र पर ध्यान देना ।

प्र. ७. इस व्रत मे अतिचार और अनाचार कैसे लगते हैं ?

उ. जिन-जिन बोलो की जितनी मर्यादा की है,उसका बेपरवा से अनजान से लेखा-जोखा नहीं मिलाने से उल्लंघ हुआ हो तो यह सब मर्यादाओं का अतिचार है उपयोग पूर्वक लोभादि के कारण जानकर उल्लंघ करना अनाचार है ।

६. दिशा परिमाण व्रत

छठा दिशिव्रत – ऊर्ध्व दिशा (उड्ढदिसि) का यथा रमाण, अधो दिशा (अहोदिसि) का यथा परिमाण, र्यक् दिशा (तिरियदिसि) का यथा परिमाण एवं यथा रेमाण किया है, उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे कर पांच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण जावज्जीवाए ाविहं तिविहेणं ✣ न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं ठे दिशि व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा जहा ते आलोऊँ – उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, होदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्पमाणाइक्कमे, व्रत्तवुड्ढी, सइअन्तरद्धा जो मे देवसिओ अइयारो कओ स्स मिच्छामि दुक्कडं ।

ल शब्द	अर्थ
ड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे	उड्ढ (ऊंची) दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो
होदिसिप्पमाणाइक्कमे	नीची दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो
रियदिसि-प्पमाणाइक्कमे	तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो

✣ "दुविह तिविहेणं" भी कोई-कोई बोलते हैं ।

खित्त-वुड्ढी (एक दिशा का क्षेत्र घटाकर अन्य
का) क्षेत्र बढ़ाया हो,

सइ अन्तरद्धा क्षेत्र परिमाण के भूल जाने से प
सन्देह पड़ने पर आगे चला हो।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. दिशा परिमाण कितने प्रकार का है ?

उ. दिशाएँ छह हैं । जिस दिशा में जितना जाना
उतना परिमाण करना । जैसे-ऊंचे पर्वत पर या
जहाज से इतने किलोमीटर से ऊंचा नहीं जाऊंगा ।
में, खान में इतने हाथ से नीचे नहीं जाऊंगा । पूर्व, प
उत्तर और दक्षिण में इतने किलोमीटर से आगे नहीं जा

प्र. २. क्षेत्र वृद्धि क्यो की जाती है ?

उ पूर्वादि दिशा की मर्यादित भूमि से आधी भूमि में भी
जाना नहीं पड़ता और पश्चिमादि भूमि में मर्यादित भू
अधिक भूमि में जाना धनादि की दृष्टि से मुझे लाभप्र
इत्यादि सोचकर एक दिशा में घटाकर दूसरी में बढ़ा

प्र. ३. दिशा परिमाण से क्या लाभ है ?

उ. लोक असंख्यात कोडाकोडी योजन विस्तार वाला
दिशाओं की मर्यादा करने से मर्यादा से बाहर जाने का सम
त्याग होने से महान् आश्रव रुक जाता है ।

७. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत

सातवां व्रत- उपभोगपरिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे। उल्लणियाविहि, २ दंतणविहि, ३. फलविहि, , अब्भंगणविहि, ५. उवट्टणविहि, ६. मज्जणविहि, . वत्थविहि, ८. विलेवणविहि, ९. पुप्फविहि, ०. आभरणविहि, ११ धूवविहि, १२. पेज्जविहि, ३. भक्खणविहि, १४. ओदणविहि, १५. सूवविहि, ६. विगयविहि, १७. सागविहि, १८. महुरविहि, ९. जीमणविहि, २०. पाणीयविहि, २१. मुखवासविहि, २ वाहणविहि, २३. उवाणहविहि, २४. सयणविहि, ५ सचित्तविहि, २६ दव्वविहि । इन छब्बीस बोलों का थापरिमाण किया है इसके उपरान्त उपभोगपरिभोग स्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, गावज्जीवाए एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं सातवां उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते तंजहा-भोयणाओ य कम्मओ य । भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोऊं--सचित्ताहारे, सचित्त पडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया, कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं

जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं तंजहा ते आलोउं- इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, केसवाणिज्जे रसवाणिज्जो, विसवाणिज्जो, जंतपीलणकम्मे णिल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरदहतलाव सोसणया, असईजणपोसणया, जो मे देवसिओ अइया कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
उल्लणियाविहि	शरीर पोंछने के अंगोछे, तौलिये आ वस्त्रों की मर्यादा करना
दंतणविहि	दाँतों को साफ करने के लिए मंजन, टूथपे बुश, लकड़ी आदि की मर्यादा करना।
फलविहि	बाल धोने के लिए आंवला अरिठा, सा मेट आदि की मर्यादा करना ।
अब्भंगणविहि	शरीर पर मालिश करने के लिए तेल द्रव्यों की मर्यादा करना ।
उवट्टणविहि	शरीर पर उबटन पीठी आदि की म करना
मज्जणविहि	स्नान की संख्या व जल के परिमाण मर्यादा करना ।
वत्थविहि	पहनने, ओढ़ने के वस्त्रों की मर्यादा क
विलेवणविहि	शरीर पर पाउडर क्रीम, चन्दन आदि लेप की मर्यादा करना ।

पुप्फविहि	फूलो की तथा फूलमाला आदि के जाति की तथा सख्या की मर्यादा करना ।
आभरणविहि	आभूपणों की जाति व वजन आदि की मर्यादा करना।
धूवविहि	अगर, तगर आदि धूपो के द्रव्यों की मर्यादा करना।
पेज्जविहि	पेय पदार्थो जैसे-दूध, शरबत, ज्यूस आदि की मर्यादा करना ।
भक्खणविहि	घेवर, लड्डू, बर्फी आदि पक्वान्न की मर्यादा करना ।
ओदणविहि	चावल, खिचड़ी, थूली आदि रन्धेज की मर्यादा करना ।
सूवविहि	मूंग, चना, उड़द, तुवर आदि दालों की मर्यादा करना।
विगयविहि	दूध, दही, घी, तेल, शक्कर-गुड आदि की मर्यादा करना।
सागविहि	हरे-सूखे सभी प्रकार के सागों की मर्यादा करना
महुरविहि	हरे फल मेवा आदि की मर्यादा करना
जीमणविहि	रोटी, पुडी, सोगरा, बड़ा, पूरणपोली आदि जीमने के द्रव्यों की मर्यादा करना
पाणीयविहि	पीने के पानी का कुआं, टांका, नल आदि की मर्यादा करना
मुखवासविहि	लोंग, इलायची, सुपारी, चूर्ण आदि की मर्यादा करना

वाहणविहि	साइकल, मोटर, तांगा, रेल, हवाई जहा बोट आदि की मर्यादा करना ।
उवाणहविहि	बूंट, चप्पल, मोजे, खडाऊ आदि की मर्य करना
सयणविहि	सोने बैठने योग्य पलंग, कुर्सी, सोफ गद्दा आदि की मर्यादा करना ।
सचित्तविहि	सजीव पदार्थ जैसे-नमक, कच्चा पा फ्रूट, मेवा आदि की मर्यादा करना
दव्वविहि	खाने-पीने के काम में आने वाले सचि या अचित्त सभी प्रकार के द्रव्यो क मर्यादा करना
दुविहे पण्णत्ते	दो प्रकार का कहा गया है ।
तंजहा	वह इस प्रकार का है
भोयणाओ	भोजन की अपेक्षा से
कम्मओ	कर्म (व्यापार) की अपेक्षा से
भोयणाओ	भोजन संबन्धी
समणोवासएणं	श्रावक के
पंच अइयारा	पांच अतिचार
जाणियव्वा	जानने योग्य हैं
न समायरियव्वा	आचरण करने योग्य नहीं हैं
सचित्ताहारे	(पच्चक्खाण उपरांत) सचित्त का आह किया हो
सचित्त पडिबद्धाहारे	सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो

प्पउलिओसहि- क्खणया	अपक्व का आहार किया हो
प्पउलिओसहि- क्खणया	दुष्पक्व का आहार किया हो
च्छोसहि- क्खणया	तुच्छ औषधि का आहार किया हो
म्मओ	कर्म (व्यापार) संबन्धी
ण्णरस कम्मादाणाइं	पन्द्रह कर्मादान
गालकम्मे अंगार कर्म)	कोयला, ईट आदि बनाना, बिजली से चलने वाली मशीने, लुहार, सुनार भड़भूजा, हलवाई आदि का धन्धा जिसमे अग्निकाय का महारम्भ व त्रस जीवो का आरम्भ हो ।
णकम्मे वन कर्म)	वनों का ठेका लेकर वृक्ष फल, फूल पत्ते आदि काट कर आजीविका करना
ाडीकम्मे शकट कर्म)	गाड़ी, तांगा, मोटर ठेले आदि बनाना व बेचना
ाडीकम्मे (भाटी कर्म)	गाड़ी, मोटर, तांगा, घोडे, मकान आदि भाडे देना व उससे आजीविका करना
फोडीकम्मे स्फोटी कर्म)	जिसमे पृथ्वीकाय व उसके आश्रित जीवों का महारम्भ हो ऐसा काम । जैसे हल से भूमि फोड़ना (खेती करना) मिट्टी, धातु आदि खनिज पदार्थो का खनन करना जमीन खोदने का ठेका लेना । दालें बनाना पिसाई आदि करना ।

दंतवाणिज्जे (दन्त वाणिज्य)	त्रसकायिक जीवों के अवयवो का व्य करना जैसे दांत, केश, चमड़ा, शंख
लक्खवाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य)	जिसमें त्रसकाय के जीवों की ग विराधना हो जैसे- लाख, चपड़ी, सुला धान्य आदि का व्यापार करना ।
केसवाणिज्जे (केश वाणिज्य)	केशवाले जीवों का व्यापार करना जै गाय, भैंस हाथी, घोड़ा, दास दासी, आदि ।
रसवाणिज्जे (रस वाणिज्य)	मदिरा, घी, तेल, गुड़ शक्कर, दूध, घास पेट्रोल, शहद आदि या रसवाले या प्र पदार्थ का व्यापार करना ।
विसवाणिज्जे (विष वाणिज्य)	संखिया आदि विष, तलवार आदि शस्त्र टिड्डी-चूहे आदि मारने की दवा-पाउ आदि का व्यापार करना ।
जंतपीलणकम्मे (यंत्रपीड़नकर्म)	तिल, ईख, मूंगफली, राडड़ा आदि को यंत्रों द्वारा पीलना, कपास से रूई निकाल आदि मशीनों से कार्य करना ।
निल्लंछणकम्मे (निर्लाछनकर्म)	बैल, घोडे, मनुष्य आदि को नपुंसक बना डाम आदि देना, अंगोपांगों का छेदन अ कार्य करना।
दवग्गिदावणाया (दवाग्नि दापनता)	खेत, जंगल, भूमि के घास आदि कचरे अग्नि जलाकर साफ करने के ठेके आदि काम करना ।

रदहतलायसोसणया जिसमें अप्काय तथा उसके आश्रित मच्छियां
सरोहृदतड़ागशोषणता) आदि जलचर जीवो का महारंभ हो ऐसा काम जैसे-सरोवर, द्रह, तालाब आदि जलाशयों का पानी निकालकर खेती के लिए सूखाना आदि कार्य करना ।

असईजण पोसणया वेश्यावृति के लिए कन्या आदि का, शिकार
असतीजन पोषणता) के लिए कुत्ते आदि का पोषण करना ।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. उपभोग किसे कहते हैं ?

उ. जो पदार्थ एक ही बार भोगे जाते हैं, वे ''उपभोग'' कहलाते है जैसे- अन्न, पानी आदि ।

प्र. २. परिभोग किसे कहते है ?

उ. बार-बार भोगे जाने योग्य पदार्थ ''परिभोग'' कहलाते हैं जैसे - वस्त्र, आभूपण, शय्या आदि ।

प्र. ३. उपभोग परिभोग परिमाण व्रत क्या है ?

उ. उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओं का परिमाण करना, छब्बीस बोलों की मर्यादा करना एवं मर्यादा के उपरान्त उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओ के भोगोपभोग का एवं पन्द्रह कर्मादान का त्याग करना उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है।

प्र. ४. ''सचित्ताहार'' अतिचार क्या है ?

उ सचित्त त्यागी श्रावक का सचित्त वस्तु जैसे - पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि का आहार अनाभोग आदि से

करना एवं सचित्त वस्तु का परिमाण करने वाले श्राव
का परिमाणोपरान्त सचित्त वस्तु का आहार करना अथ
जो वस्तुएँ अचित्त उपभोग मे ली जाती है उनका सचि
रूप प्रयोग में लेना सचित्ताहार है ।

प्र. ५. सचित्त त्याग से क्या लाभ है ?

उ. १. स्वाद विजय २. जहां अचित्त वस्तु खाने की सुवि
न हो वहाँ संतोष ३. खरबूजादि ऐसे पदार्थ जिनको सू
कर नहीं खाया जाता, उनका सर्वथा त्याग । ४ प
तिथियों को घर में आरंभ नहीं होना, जीवो के प्र
विशेष अनुकम्पा का लक्ष्य आदि कई लाभ हैं । य
सबके लिए उपयोगी हो सकता है ।

प्र. ६. 'सचित्त प्रतिबद्धाहार' किसे कहते हैं ?

उ. सचित्त वृक्षादि से सम्बद्ध अचित्त गोन्द या पक्के फ
आदि खाना अथवा सचित्त बीज से सम्बद्ध अचित्त ख
आदि खाना या बीज सहित फल को यह सोचकर खा
कि इसमें अचित्त अंश खा लूंगा और सचित्त बीजां
अंश को फेंक दूंगा, "सचित्तप्रतिबद्धाहार" है ।

प्र. ७. "अपक्व औषधि भक्षण" अतिचार कैसे लगता है ?

उ. अपक्व अर्थात् पूरी तरह अचित्त न बने हुए पदा
का आहार करने से अपक्व औषधि भक्षण अतिच
लगता है।

प्र. ८. "दुष्पक्व औषधि भक्षण" अतिचार क्या है ?

उ. दुष्पक्व अर्थात् अधपके या अविधि से पके हुए या बु
तरह से विशेष हिंसक तरीके से पकाये गये पदार्थ जै

छिलके समेत सेके हुए भुट्टे, होले, ऊंबी आदि का आहार करना, दुष्पक्व औषधि भक्षण अतिचार है ।

९. तुच्छौषधि किसे कहते है ?

तुच्छ अर्थात् अल्प सार वाले-जिसमें खाने का अंश कम और फेकने का अंश ज्यादा हो जैसे - सीताफल, गन्ना आदि, ऐसे पदार्थो का भक्षण करने से तुच्छौषधि भक्षण अतिचार लगता है ।

१०. कर्मादान किसे कहते हैं ?

जिन धन्धों और कार्यो से ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का विशेष बन्ध होता है, उन्हे "कर्मादान" कहते है । अथवा कर्मों के हेतुओ को कर्मादान कहते हैं । कर्मादान पन्द्रह है ।

११. पांचवां, छठा और सातवां व्रत प्रायः एक करण तीन योग से क्यो लिये जाते हैं ?

क्योंकि श्रावक अपने पास मर्यादा से अधिक धन हो जाने पर धर्म पुण्य में व्यय करता है, वैसे अपने पुत्रादि को देने का ममत्व भी त्याग नही पाता । इसी प्रकार कही गडा धन मिल जाय तो उसे अपने स्वजनो को देने का मोह भी त्याग नहीं पाता ।

इसी प्रकार छठे व्रत की भी स्थिति है जैसे - श्रावक अपनी की दिशाओ की मर्यादा के उपरांत स्वयं तो नही जाता पर कई बार अपने ादि को विद्या व्यापार आदि के लिये भेजने का प्रसंग आ जाता है।

इसी प्रकार उपभोग परिभोग वस्तुओं की मर्यादा के उपरान्त

पुत्रादि को भोगने के लिए कहने का अवसर आ जाता है । इस
उक्त व्रत एक करण तीन योग से ग्रहण किये जाते है । यह बात सा
दर्जे के श्रावक को लक्ष्य में रखकर कही गई है, विशिष्ट श्राव
व्रतों को विशिष्ट करण योगों से भी ग्रहण कर सकता है ।

प्र. १२. रात्रि भोजन का त्याग कौनसे व्रत मे आता है ?

उ. रात्रि भोजन का त्याग श्रावक के सातवे व्रत में गर्भि
यह उपभोग परिभोग की कालाश्रित मर्यादा है ।

प्र. १३. उपभोग परिभोग की वस्तुओं की मर्यादा से क्या लाभ

उ. संकल्प विकल्प से मुक्ति मिलती है । आवश्यक
घटती है । जीवन संतोपमय व त्याग मय बनता है
धर्माचरण के लिए अधिक समय मिलता है । मर्या
भूमि के वाहर उपभोग परिभोग की वस्तुओ का स
और मर्यादित भूमि में भी बहुत सी वस्तुओं का
होने से आश्रव रुकता है ।

८. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत

**आठवाँ व्रत - अणट्ठादण्ड विरमण - चउव्वि
अणट्ठादण्डे पण्णत्ते तंजहा - अवज्झाणायरिए
पमायायरिए ✣, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे, ए
अणट्ठादण्ड सेवन का पच्चक्खाण जिसमें आठ
आगारआए वा, राए वा, णाए वा, परिवारे वा, देवे वा**

✣ पाठान्तर – अवज्झाणाचरिए, पमायाचरिए

ागे वा, जक्खे वा, भूए वा एत्तिएहिं आगारेहिं अण्णत्थ ावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा ायसा कायसा एवं आठवां अनर्थदण्ड विरमण व्रत के च अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते ालोउं-कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे वभोगपरिभोगाइरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ स्स मिच्छामि दुक्कडं ।

ूल शब्द	अर्थ
ाणट्ठादंडे	अनर्थदण्ड
ावज्झाणायरिए	अप (आर्त्त-रौद्र) ध्यान करना
ामायायरिए	प्रमाद पूर्वक आचरण करना
ंसप्पयाणे	हिंसा आदि पापों के साधन देना
ावकम्मोवएसे	पापकर्म का उपदेश देना
ाए	अपने लिए
ा	अथवा
ाए	राजा के लिए
ाए	ज्ञाति के लिए
ारिवारे	परिवार के लोग सेवक और भागीदार आदि के लिए
्वे	वैमानिक ज्योतिषी देवों के लिए
ागे	भवनपति देवों के लिए
ूए	भूत आदि के लिए
ाक्खे	यक्ष आदि व्यंतर देवों के लिए

एत्तिएहिं	इत्यादि
आगारेहिं	आगारो के
अण्णत्थ	सिवाय दूसरे प्रकार से
कंदप्पे	काम विकार पैदा करने वाली की हो
कुक्कुइए	भण्ड कुचेष्टा की हो
मोहरिए	मुखरी वचन बोला हो
संजुत्ताहिगरणे	अधिकरण जोड़ रखा हो
उवभोगपरिभोगाइरित्ते	उपभोग परिभोग अधिक बढ़ाया

प्रश्नोत्तर

प्र. १. दण्ड किसे कहते हैं ?

उ. जिससे आत्मा व अन्य प्राणी दंडित हो अर्थात्
हिंसा हो इस प्रकार की मन, वचन, काया की
प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं ।

प्र. २. अर्थदण्ड किसे कहते हैं ?

उ. स्व, पर या उभय के प्रयोजन के लिये त्रस, स्थावर
की हिंसा करना अर्थदण्ड है ।

प्र. ३. अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?

उ. जो कार्य स्वयं के, परिवार के, सगे सम्बन्धी मित्रों
हित में न हो, जिसका कोई प्रयोजन न हो और व्य
आत्मा पापों से दंडित हो, उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं

प्र. ४. अनर्थ दण्ड के अन्तर्गत आने वाले कुछ कार्य बताइये

जैसे - विकथा करना, बुरा उपदेश देना, फिजूल बातें करना आदि प्रवृत्तियां अनर्थ दण्ड है ।

५. अवज्झाणायरिए (अपध्यानाचरित) किसे कहते हैं ?

बिना कारण आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करना या सकारण तीव्र आर्तध्यान करना अपध्यानाचरित कहलाता है । क्रोध में अपना सिर आदि पीट लेना, बिना कारण ही दांत पीसना, पुरानी बातों को याद करके रोना, शेख चिल्ली के समान भौतिक सुख पाने के लिये कल्पना की उडाने भरना अपध्यानाचरित है ।

प्र. ६. पमायायरिए (प्रमादाचरित) किसे कहते है ?

उ. प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा में लगे रहना तथा प्रमाद से कार्य करना जिससे जीवों की हिंसा हो जैसे - बिना देखे चलना, फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल घी आदि तरल पदार्थो के बर्तनों को खुले रख देना आदि प्रमादाचरित है ।

प्र. ७ हिंसप्पयाणे (हिंस्र प्रदान) किसे कहते हैं ?

उ. हिंसा आदि पापो के साधन अस्त्र शस्त्रादि या तत्संबंधी साहित्य दूसरों को देना हिंस्र प्रदान कहलाता है ।

प्र. ८. पावकम्मोवएसे (पापकर्मोपदेश) क्या है ?

उ पाप कार्यो का उपदेश देना, पाप कार्यो की प्रेरणा करना पापकर्म उपदेश है ।

प्र. ९. कंदप्पे (कंदर्प) किसे कहते है ?

एत्तिएहिं	इत्यादि
आगारेहिं	आगारों के
अण्णत्थ	सिवाय दूसरे प्रकार से
कंदप्पे	काम विकार पैदा करने वाली क… की हो
कुक्कुइए	भण्ड कुचेष्टा की हो
मोहरिए	मुखरी वचन बोला हो
संजुत्ताहिगरणे	अधिकरण जोड़ रखा हो
उवभोगपरिभोगाइरित्ते	उपभोग परिभोग अधिक बढ़ाया हो।

प्रश्नोत्तर

प्र. १. दण्ड किसे कहते हैं ?

उ. जिससे आत्मा व अन्य प्राणी दंडित हो अर्थात् उन… हिंसा हो इस प्रकार की मन, वचन, काया की कलु… प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं ।

प्र. २. अर्थदण्ड किसे कहते हैं ?

उ. स्व, पर या उभय के प्रयोजन के लिये त्रस, स्थावर जी… की हिंसा करना अर्थदण्ड है ।

प्र. ३. अनर्थ दण्ड किसे कहते हैं ?

उ. जो कार्य स्वयं के, परिवार के, सगे सम्बन्धी मित्रादि… हित में न हो, जिसका कोई प्रयोजन न हो और व्यर्थ… आत्मा पापों से दंडित हो, उसे अनर्थ दण्ड कहते हैं ।

प्र. ४. अनर्थ दण्ड के अन्तर्गत आने वाले कुछ कार्य बताइये

जैसे - विकथा करना, बुरा उपदेश देना, फिजूल बातें करना आदि प्रवृत्तियां अनर्थ दण्ड है ।

प्र. ५ अवज्झाणायरिए (अपध्यानाचरित) किसे कहते हैं ?

उ. बिना कारण आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करना या सकारण तीव्र आर्त्तध्यान करना अपध्यानाचरित कहलाता है । क्रोध में अपना सिर आदि पीट लेना, बिना कारण ही दांत पीसना, पुरानी बातो को याद करके रोना, शेख चिल्ली के समान भौतिक सुख पाने के लिये कल्पना की उडाने भरना अपध्यानाचरित है ।

प्र. ६. पमायायरिए (प्रमादाचरित) किसे कहते हैं ?

उ. प्रमादपूर्वक आचरण करना अर्थात् मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा में लगे रहना तथा प्रमाद से कार्य करना जिससे जीवों की हिंसा हो जैसे - बिना देखे चलना, फिरना, वस्तु को उठाना, रखना, पानी, तेल घी आदि तरल पदार्थो के बर्तनों को खुले रख देना आदि प्रमादाचरित है ।

प्र. ७ हिंसप्पयाणे (हिंस्र प्रदान) किसे कहते हैं ?

उ. हिंसा आदि पापो के साधन अस्त्र शस्त्रादि या तत्संबंधी साहित्य दूसरो को देना हिंस्र प्रदान कहलाता है ।

प्र ८. पावकम्मोवएसे (पापकर्मोपदेश) क्या है ?

उ पाप कार्यो का उपदेश देना, पाप कार्यो की प्रेरणा करना पापकर्म उपदेश है ।

प्र. ९. कंदप्पे (कंदर्प) किसे कहते हैं ?

उ. काम उत्पन्न करने वाले वचन का प्रयोग करना, राग के आवेश मे हास्य मिश्रित मोहोद्दीपक मजाक करना कन्दर्प कहलाता है ।

प्र. १०. कुक्कुइए (कौत्कुच्य) अतिचार क्या है ?

उ. भांडों की तरह भौएं, नेत्र, नासिका, ओष्ठ, मुख, हाथ पैर आदि अंगों को विकृत बना कर दूसरों को हंसाने वाली चेष्टा करना कौत्कुच्य अतिचार है ।

प्र. ११. मोहरिए (मौखर्य) अतिचार कैसे लगता है ?

उ. ढिठाई के साथ असत्य, ऊटपटांग वचन बोलने से मौखर्य अतिचार लगता है ।

प्र. १२. संजुत्ताहिगरणे (संयुक्ताधिकरण)किसे कहते है ?

उ. पृथक्-पृथक् स्थानों पर पड़े हुए शस्त्रों के अवयवों को मिलाकर एक स्थान पर रखना, शस्त्रो का विशेष संग्रह रखना संयुक्ताधिकरण कहलाता है । कार्य करने मे समर्थ ऐसे ऊखल और मूसल, शिला और लोढ़ा, हल और फाल, गाड़ी और जूआ, धनुष और बाण, वसूला और कुल्हाड़ी आदि दुर्गति में ले जाने वाले अधिकरणों को जो साथ ही काम आते हैं, एक साथ रखना संयुक्ताधिकरण अतिचार है ।

प्र. १३. कंदर्पादि से कौन-कौन से अनर्थदण्ड होते हैं ?

उ. कंदर्प और कौत्कुच्य से अपध्यानाचरित और प्रमादाचरित अनर्थदण्ड होता है। मौखर्य से पापकर्मोपदेश, संयुक्ताधिकरण से हिंस्रप्रदान और उपभोग परिभोगातिरेक से हिंस्रप्रदान और प्रमादाचरित अनर्थदण्ड होता है ।

९. सामायिक व्रत

नववां व्रत - सामायिक सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि न ारवेमि मणसा वयसा कायसा ऐसी मेरी सद्दहणा है रूपणा है, सामायिक की शुद्ध फरसना करके शुद्ध ाऊँ॰ एवं नववें सामायिक व्रत के पंच अइयारा ाणियव्वा न समायरियव्वा तंजहा ते आलोउं - णदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, ामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि ुक्कडं ।

ूल शब्द	अर्थ
ामायिक	समभाव की साधना
ावज्जं जोगं	सावद्य योग का
ावनियमं	यावत् (एक मुहूर्त आदि) नियम तक
ज्जुवासामि	(इस व्रत का) पालन करता हूँ
सद्दहणा	श्रद्धा
प्ररूपणा	प्ररूपणा-प्रतिपादन करना
मणदुप्पणिहाणे	मन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो
वयदुप्पणिहाणे	वचन के अशुभ योग प्रवर्ताये हो

ॐ जब सामायिक मे न हो पोपधादि मे हो तव इस प्रकार वोले- ऐसी ...ो सद्दहणा प्ररूपणा तो है, सामायिक का अवसर आये, सामायिक करूं तव फरसना करके शुद्ध होऊ ।

कायदुप्पणिहाणे	काया के अशुभ योग प्रवर्ताये हो
सामाइयस्स	सामायिक की
सइ अकरणया	स्मृति न की हो
सामाइयस्स -	
अणवट्ठियस्स करणया	समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी

प्रश्नोत्तर

प्र. १. सामायिक किसे कहते हैं ?

उ. समभाव की प्राप्ति को सामायिक कहते हैं ।

प्र २. सामायिक में किसका त्याग करना होता है ?

उ. सावद्य योगों का ।

प्र. ३. सावद्य योग किसे कहते हैं ?

उ. अठारह पाप स्थान को सावद्य योग कहते हैं ।

प्र. ४. साधुजी और श्रावक की सामायिक में क्या अन्तर है ?

उ. साधुजी की सामायिक जीवन पर्यन्त और श्रावक की सामायिक एक दो मुहूर्त या नियम पर्यन्त होती है। साधुजी की सामायिक तीन करण तीन योग से होती तथा श्रावक की सामायिक प्रायः दो करण तीन योग होती है ।

प्र. ५. सामायिक व्रत को इतने पीछे नववें व्रत में क्यो दि गया ?

उ आठ व्रत यावज्जीवन ग्रहण किये जाते हैं और सामायि १-२ मुहूर्त पर्यन्त । अथवा सामायिक के शुद्धाराधन लिए अठारह पापों का ज्ञान आवश्यक है । अणु और गुणव्रतों में इनका वर्णन आ जाता है ।

१०. देशावकाशिक व्रत

दसवां व्रत - देशावकाशिक - प्रतिदिन प्रभात से प्रारम्भ कर के पूर्वादि छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी हो, उसके उपरांत आगे जाने का तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा तथा जितनी भूमिका की हद रखी हो, उसमें जो द्रव्यादि की मर्यादा की है, उसके उपरान्त उपभोग परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा एवं दसवें देशावकाशिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं- आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापुग्गल पक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
जाव	जब तक
अहोरत्तं	अहोरात्रि (दिन रात)
आणवणप्पओगे	नियमित सीमा से बाहर की वस्तु मंगवाई हो
पेसवणप्पओगे	(नौकर आदि से) भिजवाई हो

सद्दाणुवाए	(खांसी आदि) शब्द करके चेताया
रूवाणुवाए	रूप (या अंगुली आदि) दिखाकर अ भाव प्रकट किये हो,
बहिया-पुग्गलपक्खेवे	कंकर आदि (बाहर) फेककर दू को बुलाया हो

प्रश्नोत्तर

प्र. १. देशावकाशिक व्रत किसे कहते हैं ?

उ. पहले के सब व्रतों मे जो मर्यादाएं यावज्जीवन के ि की थी, उनका और भी अधिक संक्षेप प्रतिदिन के ि करना देशावकाशिक व्रत है ।

प्र. २. वर्तमान में व्रत संक्षेप कैसे किया जाता है ?

उ. वर्तमान मे चौदह नियमों से सव व्रतों का प्रतिदिन संक्षे किया जाता है । चौदह नियम इस प्रकार हैं -

१. सचित्त- पृथ्वीकाय आदि सचित्त की मर्यादा **२. द्रव्य**- खान, पान संबन्धी द्रव्यों की मर्यादा **३. विगय**- पांच विगयों में से विगय की मर्यादा **४. पन्नी**- पगरखी, चप्पल, जूते, मौजे आदि की मर्यादा **५. ताम्बूल**- मुखवास की मर्यादा **६. वस्त्र**-पहनने ओढ़ने के वस्त्रो की मर्याद **७. कुसुम**- पुष्प, इत्र आदि की मर्यादा **८ वाहन**- कार मोटर आदि वाहनो की मर्यादा **९. शयन**- सोने योग्य खाट पलंग, बिस्तर की मर्यादा **१०. विलेपन** - केशर, चन्दन तेल, साबुन, अंजन आदि की मर्यादा **११. ब्रह्मचर्य**

चौथे अणुव्रत को भी संकुचित करना, कुशील की मर्यादा **१२. दिग्**- दिशाओं की मर्यादा **१३. स्नान**-स्नान की संख्या और जल की मर्यादा **१४. भक्त**-भोजन-पानी की मर्यादा, एक बार या दो बार तथा वस्तु का परिमाण करना ।

प्र. ३. चौदह नियम धारण करने को दसवे व्रत में क्यों लिया है ?

उ. प्रतिदिन चौदह नियम धारण करने को दसवें व्रत में गिना है क्योकि चौदह नियम धारण करने से व्रतों का संक्षेप होता है और मर्यादित भूमि के उपरान्त आश्रव का त्याग होता है ।

चौदह नियमो में से किसी एक नियम को प्रतिदिन धारण करना भी देशावगासिक व्रत के अन्तर्गत है । किसी भी करण योग से मर्यादित भूमि के बाहर पांच आश्रव का त्याग दसवाँ व्रत है ।

प्र ४. क्या सामायिक में चौदह नियम धारण किये जा सकते है?

उ. सामायिक में सावद्य भाषा टालकर चौदह नियमों की धारणा की जा सकती है जैसे इतने द्रव्य उपरान्त त्याग आदि ।

प्र. ५. क्या सिर्फ दसवां व्रत धारण किया जा सकता है ?

उ. केवल दसवां व्रत धारण तो किया जा सकता है परन्तु अन्य व्रत नही होने से उनका संक्षिप्तीकरण नहीं होकर केवल एक दिन की मर्यादा होगी ।

प्र. ६. आणवणप्पओगे (आनयन प्रयोग) किसे कहते हैं ?

उ. मर्यादा किये हुए क्षेत्र से बाहर स्वयं न जा सकने से दूसरे

को 'तुम यह चीज लेते आना' इस प्रकार संदेश अ
देकर वस्तु मंगाना आनयन प्रयोग अतिचार है ।

प्र. ७. पेसवणप्पओगे (प्रेष्य प्रयोग) अतिचार क्या है ?

उ. मर्यादित क्षेत्र से बाहर स्वयं जाने से मर्यादा का अतिक्र हो जायेगा । इस भय से नौकर चाकर आदि आज्ञाका पुरुष को भेज कर कार्य कराना प्रेष्य प्रयोग अतिचार है।

प्र ८. सद्दाणुवाए (शब्दानुपात) किसे कहते हैं ?

उ. अपने घर की बाड़ या चहारदीवारी के अन्दर नियमि क्षेत्र से बाहर कार्य होने पर व्रती का व्रत भंग के भय से स्वयं बाहर न जाकर निकटवर्ती लोगों को छीक, खां आदि शब्द द्वारा ज्ञान कराना शब्दानुपात अतिचार है ।

प्र. ९. रूवाणुवाए (रूपानुपात) अतिचार क्या है ?

उ. नियमित क्षेत्र से बाहर प्रयोजन होने पर दूसरों को अप पास बुलाने के लिए अपना या पदार्थ विशेप का रु दिखाना रूपानुपात अतिचार है ।

प्र. १० बहियापुग्गलपक्खेवे (बहिः पुद्गल प्रक्षेप) किसे कहते है ?

उ. नियमित क्षेत्र से बाहर प्रयोजन होने पर दूसरों को जताने के लिए ढ़ेला, कंकर आदि फेकना बहि:पुद्गल प्रक्षेप कहलाता है ।

११. प्रतिपूर्ण पौषध व्रत

ग्यारहवां व्रत-पडिपुण्ण पौषध-असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण,

मुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला-वण्णग-
लेवण का पच्चक्खाण, सत्थ-मुसलादि-सावज्जजोग
वन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं
विहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा,
सी मेरी सद्दहणा है प्ररूपणा है卐 पौषध का अवसर आये
षिध करूँ तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं ग्यारहवां
त प्रतिपूर्ण पौषध के पंच अइयारा जाणियव्वा न
मायरियव्वा तंजहा ते आलोउं -अप्पडिलेहिय-
ुप्पडिलेहिय-सेज्जासंथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-
ोज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-
ासवण-भूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चार-
ासवण-भूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे
देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

मूल शब्द	अर्थ
पडिपुण्ण	प्रतिपूर्ण
पौषधव्रत	आत्मगुणो का विशेष पोपक व्रत
असणं	अशन
पाणं	पानी
खाइमं	खाद्य (फल, मेवा औषधि आदि)
साइमं	स्वाद्य (लोंग, सुपारी आदि) इन चारों आहार
का पच्चक्खाण	का प्रत्याख्यान करता हूँ

卐 जब पौषध हो तब यह पाठ बोले – ऐसी मेरी सद्दहणा है प्ररूपणा है पोषध की शुद्ध फरसना कर के शुद्ध होऊँ ।

अबंभ सेवन का-	मैथुन सेवन का
पच्चक्खाण	त्याग करता हूँ
मणि-सुवर्ण	मणि, सोना आदि के आभूषण
का पच्चक्खाण	पहनने का प्रत्याख्यान करता हूं
मालावण्णग	फूलमाला पहनने का तथा
विलेवण	(चन्दनादि के) विलेपन का
का पच्चक्खाण	प्रत्याख्यान करता हूँ
सत्थ-मुसलादि	शस्त्र, जैसे मूसल आदि को काम मे
सावज्ज-जोग-सेवन	लेने रूप सावद्य योग सेवन का
का पच्चक्खाण	प्रत्याख्यान करता हूं
अप्पडिलेहिय-	पौषध में शय्या-
दुप्पडिलेहिय :	संस्तारक की प्रतिलेखना
सेज्जा संथारए	न की हो या अच्छी तरह से न की हो
अप्पमज्जिय-	शय्या संस्तारक का
दुप्पमज्जिय	प्रमार्जन न किया हो या
सेज्जा संथारए	अच्छी तरह से न किया हो
अप्पडिलेहिय-	उच्चार प्रश्रवण
दुप्पडिलेहिय :	की भूमि को
उच्चार पासवण भूमि	न देखी हो या अच्छी तरह न देखी हो
अप्पमज्जिय-	उच्चार प्रश्रवण की
दुप्पमज्जिय :	भूमि को पूंजी न हो
उच्चार-पासवण भूमि	या अच्छी तरह से न पूंजी हो
पोसहस्स-सम्मं	पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न
अणणुपालणया	किया हो

प्रश्नोत्तर

प्र १. पौषध में आहार, अब्रह्म, शरीर सत्कार और सावद्य योग ये चार बोल छोड़ना आवश्यक है क्या ?

उ आहार को छोड़कर शेष तीन बोल छोड़ना आवश्यक है। आहार चारों या तीन छोड़े जा सकते है, कदाचित् चारो आहार किये भी जा सकते है । जिसे दया कहते हैं ।

प्र. २. पौषध का कम से कम समय कितना है ?

उ. पौषध का कम से कम समय चार प्रहर है ।

प्र. ३. पौषध के कितने प्रकार हैं ?

उ. दो प्रकार हैं- **१. प्रतिपूर्ण** -जिसमें चारो आहार छोड़े जायें और उपवास सहित अष्टप्रहर का हो **२. देश पौषध**- जिसमें पानी या चारों आहार किये जायें वह देश पौषध है। चार प्रहर आदि कोई भी काल मर्यादा ।

प्र ४. वर्तमान में देश पौषध को क्या कहते हैं ?

उ. जिसमें मात्र पानी लिया जाता है उसे तिविहार पौषध कहते हैं । जिसमें चारो आहार किये जाते है, ऐसे पौषध को दया कहते हैं ।

प्र ५. अष्ट प्रहर से कम पौषध करने वालों का और दया रूप पौषध करने वालों का शास्त्रीय उदाहरण दीजिये ?

उ यथा- भगवती सूत्र शतक १२ उद्देशक १ में शंख श्रावक ने आठ प्रहर से कम का उपवास युक्त पौषध किया था, तथा पुष्कली आदि श्रावकों ने खाते पीते पौषध किया था । जिसको अभी दया कहते हैं ।

प्र ६. सामायिक और पौषध (देश पौषध-दया) में क्या अन्तर है?

उ. सामायिक केवल एक मुहूर्त की होती है, जबकि पौषध कम से कम चार प्रहर का होता है, सामायिक में निद्रा और आहारादि का त्याग करना ही होता है, जब कि पौषध चार या अधिक प्रहर का होने से उसमें निद्रा भी ली जा सकती है और आहार भी किया जा सकता है। पौषध व्रत सामायिक का विशिष्ट बड़ा रूप है ।

प्र. ७. सामायिक मे आहार पानी की छूट क्यों नहीं ?

उ. सामायिक अल्प काल की होती है अतः इन छूटो के बिना हो सकती है, यदि इनकी छूट सामायिक मे दी जाय तो सामायिक में ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना नही हो सकेगी । पौपध विशेष काल का होने के कारण बिना छूट उसका पालन कठिन होता है ।

प्र. ८ पहले सामायिक ली हुई है और पौषध करना चाहे तो सामायिक में पौपध ले सकता है या नहीं ?

उ. हाँ, ले सकता है क्योकि पाल कर लेने से बीच मे अव्रत लगता है । लेकिन जब तक सामायिक का समय पूर्ण न हो तब तक सामायिक के विशेष नियमों का ध्यान रखे जैसे पैर फैलाना सोना आदि नहीं करे ।

प्र. ९. पौषध में सामायिक करे या नहीं ?

उ आहार युक्त देश पौषध मे सामायिक ली और पाली जा सकती है ।

प्र. १०. प्रतिलेखन प्रमार्जन किसे कहते है ?

उ. वस्त्रादि काम मे आने वाले सभी उपकरणों मे कोई जीव है या नहीं, इस दृष्टि से शीघ्रता नहीं करते हुए ध्यान से